जैन इतिहास
तीसरा भाग।
लेखक:
पं० मूलचन्द जैन वत्सल
विशारद-दमोह
किसनदास कापड़िया
प्रकाशक
सूरत
दिगम्बर जैन पुस्तकालय

सौ० सविताबाई कापडिया स्मारक ग्रन्थमाला नं० ८.

प्राचीन जैन इतिहास

तीसरा भाग ।

लेखकः—

पं० मूलचन्द्र जैन वत्सल, विद्यारत्न साहित्यशास्त्री ।

प्रकाशकः—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय,

गांधीचौक, कापड़ियाभवन—सूरत ।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६५ [प्रति १०००

"दिगम्बर जैन" के ३२ वें वर्षका उपहारग्रन्थ ।

मूल्य—बारह आने ।

मुद्रक
मूलचंद किसनदास कापड़िया
जैन विजय प्रेस
सूरत

सौ० सविताबाई मूलचंद कापड़िया
स्मारक ग्रंथमाला नं० ८

हमारी स्वर्गीय धर्मपत्नी सौभाग्यवती सविताबाईका वीर सं० २४५६ में सिर्फ २२ वर्षकी अल्पायुमें एक पुत्र चि० बाबूभाई और एक पुत्री चि० दमयंतीको बिलखते छोड़कर स्वर्गवास होगया था, तब उनके स्मरणार्थ हमने २६१२) का दान किया था। उसमेंसे २०००) स्थायी शास्त्रदानके लिये निकाले थे जिसकी आयसे उपरोक्त ग्रन्थमाला प्रकट की जाती है।

आजतक इस ग्रन्थमालासे निम्नलिखित ७ ग्रन्थ प्रकट हो चुके हैं और दिगम्बर जैन तथा जैन महिलादर्शके ग्राहकोंको भेट दिये जा चुके हैं—

१–ऐतिहासिक स्त्रियां (ब्र० पं० चन्दाबाईजी कृत)	।॥)
२–संक्षिप्त जैन इतिहास (द्वि० भाग प्र० खण्ड)	१॥।)
३–पंचरत्न (बाबू कामताप्रसादजी कृत)	।=)
४–संक्षिप्त जैन इतिहास (द्वि० भाग द्वि० खण्ड)	१=)
५–वीर पाठावलि (बाबू कामताप्रसादजी कृत)	।॥)
६–जैनत्व (रमणीक बी० शाह वकील कृत)	।=)
७–संक्षिप्त जैन इतिहास (भाग ३ खण्ड १)	१)

और यह आठवां ग्रन्थ—प्राचीन जैन इतिहास तीसरा भाग प्रकट करके "दिगम्बर जैन" के ३२ वें वर्षके ग्राहकोंको भेट बांटा जा रहा है। तथा कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं।

यदि जैन समाजके श्रीमान शास्त्रदानका महत्व समझें तो ऐसी कई स्मारक ग्रन्थमालाएँ दिगम्बर जैन समाजमें निकल सकती हैं (जैसा कि श्वेताम्बर जैन समाजमें लाखों रु० के दानकी हैं लेकिन इसके लिये सिर्फ दानकी दिशा बदलनेकी आवश्यकता है; क्योंकि दिगम्बर जैन समाजमें दान तो बहुत निकाला जाता है जो या तो अपनी बहियोंमें पड़ा रहता है या मान बड़ाईके लिये धर्मके नामसे खर्च किया जाता है। अतः अब तो जैन समाज समयकी मांगको समझें और शास्त्रदानकी तरफ अपना लक्ष्य फेरें यही आवश्यक है।

—प्रकाशक।

प्रस्तावना।

२१ वें तीर्थंकर श्री नमिनाथसे लेकर २४ वें तीर्थंकर भगवान् श्री महावीर तथा उनके समकालीन तथा बादके सुप्रसिद्ध जैनाचार्य और जैन सम्राटोंका कोई ऐसा उपयुक्त इतिहास आजतक प्रगट नहीं हुआ है, जो विद्यार्थियोंको पढ़ानेमें सुगम हो तथा सामान्य पढ़ेलिखे भाइयोंको भी स्वाध्यायपयोगी हो। अतः हमने यह 'प्रा० जैन इतिहास तीसरा भाग' नामक पुस्तक पं० मूलचन्दजी जैन वत्सल विद्यारत्न (दमोह) से प्राचीन शास्त्रोंके आधारसे तैयार कराई है। तथा साथमें वीरके सुयोग्य सं० बा० कामताप्रसादजी रचित पांच आचार्योंके चरित्र भी उपयोगी होनेसे इसमें संमिलित किये हैं। इस पुस्तककी रचना ऐसी सुगम व संक्षिप्त की गई है कि सामान्य पढ़ा लिखा हरकोई भाई या बहिन इसको समझ सकेगा।

हम पं० मूलचन्दजी वत्सलके बड़े आभारी हैं जिन्होंने इस पुस्तककी रचना कर दी है। साथमें प्रसिद्ध इतिहासज्ञ बाबू कामताप्रसादजीकी साहित्य सेवाको भी हम भूल नहीं सकते। दि० जैन समाजपर आपका उपकार अवर्णनीय है।

इस ऐतिहासिक ग्रन्थका सुलभतया प्रचार हो इसलिये यह "दिगम्बर जैन" के ३२ वें वर्षके ग्राहकोंको भेटमें देनेकी व्यवस्था की गई है तथा कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई हैं। आशा है इस प्रथमावृत्तिका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

निवेदक—

सूरत,
वीर सं० २४६५
ज्येष्ठ सुदी १५
ता० १-६-३९

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

विषय-सूची।

पाठ १-भगवान् नमिनाथ-इक्कीसवें तीर्थंकर १

पाठ २-जयसेन चक्रवर्ती ३

पाठ ३-भगवान् नेमिनाथ-बाईसवें तीर्थंकर ४

पाठ ४-महासती राजमती ८

पाठ ५-जरासिंधु १०

पाठ ६-श्री कृष्ण बलदेव १०

पाठ ७-श्री कृष्ण-जन्म और उनका पराक्रम १५

पाठ ८-श्री प्रद्युम्नकुमार २६

पाठ ९-पांच पांडव २८

पाठ १०-पितृभक्त भीष्मपितामह ३६

पाठ ११-मांसभक्षी राजा बक ३८

पाठ १२-बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ३९

पाठ १३-भगवान् पार्श्वनाथ-तेईसवें तीर्थंकर ४०

पाठ १४-भगवान् महावीर-चौबीसवें तीर्थंकर ... ४५

पाठ १५-महाराजा श्रेणिक ५०

पाठ १६-अभयकुमार ५४

पाठ १७-तपस्वी वारिषेण ६२

पाठ १८-सती चन्दना ६६

पाठ १९-अभयरत्न-जीवंधरकुमार ६८

पाठ २०—अंतिम केवली–श्री जम्बूकुमारजी ७१
पाठ २१—विद्युत्प्रभ चोर ७५
पाठ २२—श्री भद्रबाहु—अंतिम श्रुतकेवली ७६
पाठ २३—महाराजा चन्द्रगुप्त ८०
पाठ २४—सम्राट् ऐल खारवेल ८६
पाठ २५—श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य ८९
पाठ २६—आचार्यप्रवर उमास्वामी महाराज ९५
पाठ २७—स्वामी समन्तभद्राचार्य ९७
पाठ २८—श्री नेमिचन्द्राचार्य सिद्धान्त–चक्रवर्ति और वीर–शिरोमणि चामुण्डरायजी १०७
पाठ २९—श्रीमद् भट्टाकलङ्कदेव ११९

भगवान् नेमिनाथ और राजुलके विवाह-वैराग्यका दृश्य ।

(५) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आते थे और वहींसे आपके लिए वस्त्राभूषण आया करते थे।

(६) पच्चीससौ वर्ष तक आप कुमार अवस्थामें रहे, बादमें आपने पांच हजार वर्ष तक राज्य किया। आपका विवाह हुआ था।

(७) एक दिन अपने पूर्वभवोंका स्मरण कर उन्हें वैराग्य होआया। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति की और इन्द्र आदि अन्य देव आए। मिती आषाढ़ वदी दशमीके दिन एक हजार राजाओंके साथ साथ उन्होंने दीक्षा धारण की। देवोंने तपकल्याणक उत्सव मनाया। उन्हें उसी समय मन:पर्यय ज्ञान उत्पन्न हुआ।

(८) एक दिन उपवास कर दूसरे दिन वीरपुर नगरके राजा दत्तके यहां आपने आहार लिया, तब देवोंने राजाके यहां पञ्चाश्चर्य किए।

(९) नौ वर्ष तक ध्यान करनेके बाद जिस वनमें दीक्षा की थी उसी वनमें बकुलवृक्षके नीचे मगसिर सुदी पूर्णिमाको चार घातिया कर्मोंका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त किया, समवशरण सभाकी देवोंने रचना की और ज्ञानकल्याणक उत्सव मनाया।

(१०) आपकी सभामें इसप्रकार मनुष्यजातिके सभासद थे—

४५० पूर्वज्ञानके धारी
१२६०० शिक्षक मुनि
१६०० अवधिज्ञानी
१५०० विक्रिया ऋद्धिके धारी
१६०० केवलज्ञानी

१२५० मनःपर्यय ज्ञानी
१००० वादी मुनि
२००००
४५००० आर्यिका
१००००० श्रावक
२००००० श्राविकाएं

(१२) आयुके एक मास शेष रहने तक आपने सारे आर्य खंडमें विहार किया और विना इच्छाके दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश देकर प्राणियोंका हित किया।

(१३) जब आयु एक मास बाकी रह गई तब दिव्यध्वनिका होना बन्द हुआ और सम्मेद शिखर पर्वतपर इस एक माहमें शेष कर्मोंका नाश कर एक हजार मुनियों सहित वैसाख बदी १४ को मोक्ष पधारे। इन्द्रोंने मोक्षकल्याणक उत्सव मनाया।

पाठ २।

जयसेन चक्रवर्ती।

(ग्यारहवें चक्रवर्ती)

(१) भगवान् नमिनाथके समयमें ग्यारहवें चक्रवर्ती जयसेन हुए। ये कौशांबी नगरीके इक्ष्वाकुवंशी राजा विजय और रानी प्रभाकरीके पुत्र थे।

(२) इनकी आयु तीन हजार वर्षकी और शरीर आठ हाथ

ऊंचा था। इनके चौदह रत्न और नवनिधियें आदि संपत्ति थी, जो सभी चक्रवर्तियोंके प्राप्त होती हैं। इन्होंने छहों खण्डोंको विजय किया था। बत्तीस हजार राजा इनके आधीन थे। छयानवे हजार रानियां थीं।

(३) हजारों वर्षतक राज्य भोगनेके बाद एक रात्रिको तारा टूटता हुआ देखकर इनको वैराग्य उत्पन्न हुआ। इन्होंने अपने बड़े पुत्रको राज्य देना चाहा। परन्तु उसने उसे स्वीकार नहीं किया, तब छोटे पुत्रको राज्य देकर वरदत्त केवलीके पास दीक्षा धारण की और सम्मेदशिखरपर सन्यास धारण करके जयंत नामक अनुत्तर विमानमें अहमिन्द्र हुए।

पाठ ३।

भगवान नेमिनाथ (बाईसवें तीर्थंकर)

(१) भगवान् नमिनाथके मोक्ष जानेके पांच लाख वर्ष बाद श्री नेमिनाथ तीर्थंकरका जन्म हुआ।

(२) कार्तिक सुदी ६ के दिन आप गर्भमें आए। माताने रात्रिके पिछले पहरमें १६ स्वप्न देखे। इन्द्र तथा देवताओंने उनका गर्भकल्याणक उत्सव मनाया। गर्भमें आनेके छह मास पहिलेसे जन्म होने तक रत्नोंकी वर्षा हुई और देवियोंने माताकी सेवा की।

(३) आपका जन्म शौर्यपुरके महाराजा समुद्रविजय रानी शिवादेवीके श्रावण सुदी ६ के दिन तीन ज्ञानयुक्त हुआ। आपका वंश हरिवंश और गोत्र काश्यप था।

(४) एक हजार वर्षकी आपकी आयु थी और दश धनुष ऊंचा शरीर था।

(५) आपके साथ खेलनेको स्वर्गसे देव आते थे और आपके वस्त्र तथा आभूषण भी देवलोकसे आते थे।

(६) एक दिन मगधदेशके रहनेवाले एक वैश्यने राजगृहके स्वामी जरासिंधुसे द्वारिका नगरीकी सुंदरताका वर्णन किया। यह सुनकर जरासिंधु क्रोधसे अंधा होगया और युद्धको चलदिया। नारदने यह खबर श्रीकृष्णको सुनाई। सुनते ही श्रीकृष्ण शत्रुको मारनेके लिए तैयार हुए। उन्होंने श्री नेमिकुमारसे कहा कि आप इस नगरकी रक्षा कीजिए। अवधिज्ञानके धारी प्रसन्नचित्त नेमिकुमारजी मधुर नेत्रोंसे हंसे और 'ओं' कह कर स्वीकारता दी। नेमिकुमारके हंसनेसे श्रीकृष्णने विजयका निश्चय कर लिया।

(७) एक समय आप कुमार अवस्थामें अपनी भावजों (श्रीकृष्णकी रानियों) के साथ जलक्रीड़ा करते थे। स्नान करनेके बाद हंसते हुए उन्होंने सत्यभामासे अपनी धोती धोनेको कहा। सत्यभामाने तानेके साथ कहा-क्या आप कृष्ण हैं, जिन्होंने नागशय्यापर चढ़कर शारंग नामका तेजवान धनुष्य चढ़ाया और सर्व दिशाओंको कंपादेनेवाला शंख बजाया है। ऐसा साहसका काम आपसे नहीं होसकता।

(८) सत्यभामाकी बात सुनकर वे आयुधशालामें आये। वहां पहिले तो वे महाभयंकर नाग शैयापर चढ़े, फिर धनुषको चढ़ाया और बादमें अपनी आवाजसे सब दिशाओंको पूरनेवाला

शंख बजाया। सभामें बैठे हुए श्रीकृष्ण अचानक इस अद्भुत कामको सुनकर व्याकुल हुए। उन्होंने अपने सेवकोंको भेजकर सब समाचार पूछा। सेवकोंने सब समाचार उन्हें सुनाया। सेवककी बातें सुनकर श्रीकृष्ण सावधान होकर सोचने लगे कि कुमारके चित्तमें बहुत दिनोंमें राग उत्पन्न हुआ है। ये महाबलवान हैं, इसलिये राज्यकी रक्षाका प्रबन्ध करना चाहिये।

(९) राजा उग्रसेनके यहां जाकर भी श्रीकृष्णने उनकी सुंदर कन्या राजमती श्री नेमिकुमारको देनेकी याचना की। राजा उग्रसेनने प्रसन्नता सहित अपनी कन्या देना मंजूर किया। शुभ घड़ी मुहूर्तमें विवाहका उत्सव प्रारम्भ हुआ।

(१०) विवाहके एक दिन पहले श्रीकृष्णको लोभकर्मने सताया। उनके मनमें शंका हुई कि नेमिकुमार बड़े बलवान हैं, वे मेरा राज्य लेलेंगे। तब उन्होंने श्री नेमिकुमारको विरक्त करनेके लिए अनेक व्याधोंसे पशु पकड़वाकर एक बाड़ेमें बंद करवा दिये और उनकी रक्षा करनेवालोंसे कह दिया कि यदि नेमिकुमार उन्हें देखने आवें तो तुम सब उनसे कहना कि आपके विवाहमें मारनेके लिये ये पशु इकट्ठे किए हैं।

(११) श्री नेमिकुमार चित्रा नामक पालकीपर सवार होकर बारात सहित उग्रसेनके द्वारपर जारहे थे। इसी समय उन्होंने घोर करुण स्वरसे चिल्ला चिल्लाकर बाड़ेमें इधर उधर फिरते हुए भयसे दीन पशुओंको देखा। उन्हें देखकर उनको बड़ी दया उत्पन्न हुई। उन्होंने उनके रक्षकसे पूछा कि यह पशुओंका समूह एक जगह

किसलिये इकट्ठा किया गया है ? रक्षकोंने कहा—आपके विवाह महोत्सवपर मारनेके लिये श्रीकृष्णने इन पशुओंको इकट्ठा किया है।

(१२) रक्षकोंकी बात सुनकर उनके मनमें बड़ी दया उत्पन्न हुई। वे विचार करने लगे कि ये पशु वनमें रहते हैं, तृण खाते हैं और किसीका अपराध नहीं करते, ऐसे पशुओंको मेरे विवाहके लिए मारा जाता है ! इस तरह सोचकर वे विरक्त हुए, उन्होंने विवाहके आभूषण उतारडाले।

(१३) वैराग्य होनेपर लौकांतिक देवोंने आकर उन्हें प्रणाम किया और इन्द्रादि देवोंने उनका दीक्षा कल्याण उत्सव किया।

(१४) देवोंके द्वारा उठाई गई देवकुरु पालकीपर सवार होकर सहस्राम्रवनमें श्रावण शुक्ला षष्ठीके दिन चित्रा नक्षत्रमें संध्या समय तेला नियम लेकर दीक्षा धारण की।

(१५) कुमारकालके तीनसौ वर्ष बाद आपने दीक्षा धारण की थी। आपके साथ एक हजार राजा दीक्षित हुए थे।

(१६) तीन दिनके बाद उन्होंने द्वारावती नगरीमें राजा वरदत्तके यहां आहार लिया, जिससे उनके यहां पंचाश्चर्य हुए।

(१७) छप्पन दिन तपश्चरण करनेके बाद रैवतक पहाड़ पर बांसवृक्षके नीचे आश्विन वदी पड़वाके सवेरे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इन्द्रादि देवोंने ज्ञानकल्याणक मनाया और समोशरण सभा बनाई।

के समोसरणमें इस प्रकार शिष्य थे—

११ वरदत्त आदि गणधर
४०० श्रुतज्ञानके धारी
११८०० शिक्षक मुनि
१५०० अवधिज्ञानी
१५०० केवलज्ञानी
११०० विक्रिया ऋद्धिके धारी
९०० मन:पर्यय ज्ञानी
८०० वादी मुनि
१८०१२
१०००० श्रावक
३००००० श्राविकाएं

(१९) छःसौ निन्यानवे वर्ष नौ महीना चार दिन उन्होंने सब देशोंमें विहार कर धर्मोपदेश दिया। अन्तमें आयुका एक मास शेष रहनेपर आपने उपदेश देना बन्द कर दिया। और गिरनार पर्वतपर आषाढ़ शुक्ला सप्तमीके दिन कर्मोंका नाशकर मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने आपका मोक्ष कल्याणक मनाया।

पाठ ४।

महासती राजमती।

(१) राजीमती मथुराके राजा उग्रसेनकी पुत्री थी। उनका विवाह श्री नेमिकुमारजीके साथ होना निश्चित हुआ था।

(२) जिस समय श्री नेमिकुमार विवाहके लिए आ रहे

थे उस समय मार्गमें जीवोंको घिरा हुआ देखकर उन्हें दया आ गई, और उन्होंको वैराग्य हो आया।

(३) राजीमती विवाहकी खुशीमें अपने झरोखेपर बैठी हुई बारातकी चढ़ाई देख रही थी। उसने श्री नेमिकुमारको रथ वापिस लौटाते हुए देखा। सखियोंसे पूछनेपर उसे उनके वैराग्यका समाचार मालूम हुआ।

(४) समाचार सुनकर वह एकदम वेहोश होगई। कुछ समयके बाद होशमें आनेपर वह बड़ा खेद करने लगी।

(५) उसके मातापिताने बहुत समझाया कि यदि श्री नेमिकुमार वैरागी होगए हैं तो क्या हुआ, अभी उनके साथ तेरा विवाह तो हुआ ही नहीं है। किसी दूसरे सुन्दर राजकुमारके साथ तेरा विवाह करा दिया जायगा।

(६) माता पिताकी इन बातोंसे उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा—मेरे तो एक पति श्री नेमिकुमार ही हैं, उनके सिवाय सब मेरे पिता पुत्रके समान हैं। इतना कहकर वह श्री नेमिकुमारके मनानेको रैवतक पहाड़पर पहुंची।

(७) उसने श्री नेमिकुमारको फिरसे लौट चलनेको बहुत कहा परन्तु उनका मन अडोल रहा, तब राजीमती भी उनके पास दीक्षा लेकर आर्यिका बन गई।

(८) राजीमती भगवानके समोशरणकी प्रधान आर्यिका हुई और उसने महान् तप करके सोलहवें स्वर्गमें इन्द्रपद प्राप्त किया।

पाठ ५।

जरासिंधु।

(नवमां प्रतिनारायण)

(१) जरासिंधु राजगृहके राजा सिंधुपतिका पुत्र था। बाल्यावस्थासे ही वह बड़ा पराक्रमी और बलवान था।

(२) उसने अपने पराक्रमसे मगध देशके सभी राजाओंको अपने वशमें कर लिया था।

(३) कुछ समयके पश्चात् उसको चक्ररत्नकी प्राप्ति हुई जिसके बलसे उसने तीन खण्डके राजाओंको जीत लिया।

(४) श्रीकृष्ण नारायणके द्वारा जरासिंधुका वध हुआ और वह मरकर नर्क गया।

पाठ ६।

श्रीकृष्ण-बलदव।

(नवमें बलभद्र और नारायण श्रीकृष्णके पूर्वज)

(१) शौर्यपुर नगरके हरिवंशी राजा सूरसेन थे। उनके अंधकवृष्टि और नरवृष्टि नामक दो पुत्र हुए थे।

(२) अंधकवृष्टिकी रानी सुभद्राके १० पुत्र हुए। जिनमें समुद्रविजय सबसे बड़े और वसुदेव सबसे छोटे थे। कुंती और माद्री नामकी दो पुत्रियां भी उनके हुई थीं। नरवृष्टिकी रानी पद्मावतीसे उग्रसेन आदि तीन पुत्र और गांधारी नामक पुत्री हुई।

(३) महाराज अंधकवृष्टि समुद्रविजयको राज्य देकर मुनि होगए। समुद्रविजयने आठों भाइयोंमें अपना राज्य बांट दिया।

(४) कुमार वसुदेव बहुत सुन्दर थे। वे विहारके लिए प्रतिदिन नगरके बाहर जाया करते थे। वे ठीक देवकुमार जैसे मालूम पड़ते थे। नगरकी नारियां उन्हें देखकर मोहित होजाती थीं और अपना कामकाज भूलकर एकटक इन्हें ही देखती रह जाती थीं। अपनी सास आदिकी भी कुछ बात नहीं सुनती थीं इसलिए कुमार वासुदेवके बाहर निकलनेसे नगरके लोग बहुत दुःखी होते थे। एक दिन सबने मिलकर महाराजा समुदविजयसे अपना दुःख प्रकट किया। महाराजने वसुदेवके लिए राजमंदिरके चारों ओर मनोहर वन, राजभवन और कृत्रिम पर्वत बनवाकर उनसे उसमें घूमनेके लिए कहा। अब बाहर न जाकर वे वहीं घूमने लगे।

(५) एक दिन एक सेवकके द्वारा उन्हें मालूम हुआ कि महाराज समुद्रविजयने उन्हें बाहर जानेसे रोक दिया है। इससे उन्हें दुःख हुआ। दूसरे दिन किसीसे विना कहे सुने वे विद्या सिद्धिके बहाने अकेले ही नगरसे बाहर निकल गए। समुद्रविजयने उनकी बहुत खोज कराई परन्तु उनका कुछ पता न लगा।

(६) नगरसे निकलकर वे विजयपुर ग्राममें पहुंचे और विश्रामके लिए अशोक वृक्षके नीचे घनी छायामें बैठ गए। उस वृक्षकी छाया कभी स्थिर नहीं होती थी। उनके बैठनेसे वृक्षकी छाया स्थिर होगई। मालीने उस वृक्षकी छायाको स्थिर देखकर मगध देशके राजाको उसकी खबर दी। राजासे निमित्तज्ञानीने कहा था कि

जिसके बैठनेसे छाया स्थिर होगी वही तेरी कन्याका पति होगा। इसलिये मगधेशने अपनी श्यामला नामक कन्या वसुदेवको समर्पण की।

(७) वसुदेवने वहांसे चलकर अनेक देशोंमें भ्रमण किया और अपनी वीरता और पराक्रमके प्रभावसे अनेक राजाओंको वशमें किया और उनके द्वारा अनेक सुन्दर कन्याएं ग्रहण कीं।

(८) एक समय घूमते २ वे अरिष्टनगरमें आए। वहांके राजा हिरण्यवर्माकी पुत्री रोहिणीका स्वयंवर होरहा था। वे भी वहां एक स्थानपर जाकर खड़े होगए। कन्या रोहिणीने सब राजाओंको छोड़कर वसुदेवके गलेमें वरमाला डाली। इससे अन्य सभी राजा क्रोधित होगए। महाराज समुद्रविजय भी स्वयंवरमें आए थे। उन्होंने वेष बदले वसुदेवको नहीं पहचाना और वे भी सब राजाओंके साथ कन्याको हर लेजानेके लिये युद्धको तैयार होगये। उसी समय वसुदेवने अपना नाम खुदा हुआ एक बाण समुद्रविजयके पास भेजा, उसको पढ़कर उन्हें बड़ा आश्चर्य और हर्ष हुआ, उन्होंने सब राजाओंको युद्धसे रोका और अपने सब भाइयोंके साथ वसुदेवसे मिलने गये। वसुदेवने उनको नमस्कार किया और जो भूमिगोचरी तथा विद्याधरोंकी कन्याएं उन्होंने विवाही थीं, उन्हें लाकर सुखपूर्वक नगरमें रहने लगे।

(९) नव मास व्यतीत होनेपर रोहिणी रानीके पद्म नामक नौवें बलभद्रका जन्म हुआ।

(१०) राजा उग्रसेनकी रानी पद्मावतीके गर्भसे एक बालक पैदा हुआ। जन्म समय ही वह भौंहे चढ़ाये अपने ओठोंको दबाये

हुए टेढ़ी निगाहसे देख रहा था। माता—पिताने उसे अनिष्टकर जानकर कांसोंकी एक संदूकमें रखकर उसे यमुनामें बहा दिया। कौशांबी नगरीकी एक शूद्र स्त्री मन्दोदरीको वह संदूक मिली। उसने बालकको निकाल कर उसका कंस नाम रखकर पालन—पोषण किया। बड़ा होनेपर अधिक उपद्रवी होनेके कारण उसने कंसको घरसे निकाल दिया। वह सूरीपुर पहुंचा और वसुदेवका सेवक बनकर रहने लगा।

(१०) राजा जरासिंधुका एक शत्रु था जो किसीसे नहीं जीता जाता था। उसके जीतनेके लिए उन्होंने अपना आधा राज्य और कन्या देनेकी घोषणा की। वसुदेवने कंसको साथ लेजाकर शत्रुको जीत लिया। इसलिये जरासिंधुने अपना आधा राज्य और कन्या वसुदेवको देना चाही। परन्तु वसुदेवको वह कन्या पसंद नहीं थी। इसलिये उन्होंने जरासिंधुसे कहा कि शत्रुको कंसने जीता है उसे ही यह इनाम मिलना चाहिये। जरासिंधुने कंसका कुल आदि जानकर उसे अपना आधा राज्य और कन्या दे दी। कंसको जब अपना पिछला हाल मालूम हुआ तो पूर्वभवके वैरके कारण उसे माता पितापर बड़ा क्रोध आया। वह मथुरापुरी गया और माता पिताको पकड कर उन्हें नगरके दरवाजे पर कैदमें रख दिया। इसके बाद वह वसुदेवको नगरमें लाया और प्रसन्न होकर उसने अपने काका देवसेनकी पुत्री अपनी छोटी बहिन देवकीका उनके साथ विवाह कर दिया।

(११) एक समय कंसके यहां अतिमुक्तक नामक मुनि

आए। उन्हें देखकर उसकी स्त्री जीवंयसाने देवकीके ऋतु वस्त्र दिखलाकर उनकी हंसी की। तब मुनिराजने कहा—"तू क्या हसी कर रही है? इसी देवकीका पुत्र तेरे पति और पिताका नाश करनेवाला होगा। जीवंयशाने कंससे यह बात कही। इन बातोंसे कंस बहुत डरा, क्योंकि वह जानता था कि मुनियोंकी बातें कभी झूठ नहीं होतीं।" तब उसने राजा वसुदेवसे बड़े प्रेमसे यह याचना की कि आपकी आज्ञानुसार देवकी मेरे ही घरमें प्रसूति करे। वसुदेवने उसकी बात मान ली।

(११) दूसरे दिन अतिमुक्तक मुनि आहारके लिये देवकीके यहां आए, तब उन्होंने देवकीसे कहा कि तेरे सात पुत्र होंगे उनमेंसे छह पुत्र तो दूसरी जगह पाले पोसे जाकर मुक्ति जायेंगे और सातवां पुत्र नारायण होगा।

(१२) देवकीने तीन बारमें दो दो चरमशरीरी पुत्र उत्पन्न किये। जब जब ये पुत्र हुए तब उसी समय ज्ञानी इन्द्रकी आज्ञासे नेगमर्ष नामके देवने सब पुत्र उठाकर भद्रिल नगरकी अलका नामक वैश्य वधूके यहां रख दिये और उसके उसी समय पैदा हुए मरे पुत्रोंको देवकीके आगे डाल दिया। कंसने उन मरे पुत्रोंको देखकर सोचा कि इन मरे पुत्रोंसे मेरी क्या हानि होसकती है, परन्तु फिर शंका बनी रहनेके कारण उन मरे हुए बच्चोंको भी शिलापर पटकवा दिया।

पाठ ७।

श्री कृष्ण जन्म और उनका पराक्रम।

(१) भादों कृष्ण अष्टमीको देवकीके सातवें महीने महाप्रतापी श्रीकृष्णका जन्म हुआ। जन्म होते ही वसुदेव और बलभद्रने कंसको बिना जताये ही नन्द गोपके घर पहुंचा देनेका विचार किया। बलभद्रने श्रीकृष्णको उठा लिया और वसुदेवने उसपर छत्र लगाया। रात अंधेरी थी, इसलिये श्रीकृष्णने पुण्य कर्मके उदयसे नगरके देवताने बैलका रूप धारण किया और अपने दोनों सींगोंपर मणियां लगाकर आगेर चलने लगा। उसी समय बालकके चरणस्पर्श होते ही नगरके बड़े दरवाजेके किवाड़ खुल गये। रात्रिमें किवाड़ खुलते देखकर बंधनमें पड़े राजा उग्रसेनने बड़े आश्चर्यसे पूछा। इस समय किवाड़ किसने खोले। यह बात सुनकर बलभद्रने कहा—आप चुप रहिये। यह किवाड खोलनेवाला, इस बंधनसे आपको शीघ्र छुड़ायगा। वहांसे वे दोनों पिता पुत्र रात ही यमुना नदीपर पहुंचे। नारायणके प्रभावसे यमुनाने भी मार्ग देदिया।

(२) वे दोनों अचरजके साथ यमुनाको पार कर आगे चले। उन्होंने बड़े यत्नसे बालिकाको गोदीमें लेकर आते हुए नंदगोपालको देखा। उन्हें देखकर बलभद्रने पूछा—आप रात्रिमें ही अकेले क्यों आ रहे हैं? इसके उत्तरमें नमस्कार कर नंदगोपालने कहा—मेरी स्त्रीने पुत्र पानेके लिए देवीकी उपासना की थी। उस देवीने पुत्र होनेका आश्वासन देकर आज रातमें ही एक कन्या लाकर दी है

और कहा है कि यह कन्या आपको दे आना, इसलिए मैं रातमें ही आपके यहाँ पहुँचनेके लिए जा रहा हूं। नंदगोपकी यह बातें सुनकर दोनों पिता पुत्र संतुष्ट हुए, उन्होंने नंद गोपसे पुत्री लेकर अपना पुत्र दे दिया और समझा दिया कि यह बालक होनहार चक्रवर्ती है। इसके बाद ये दोनों पिता पुत्र छिपकर विना किसीको मालूम हुए मथुरा लौट आए।

(३) नंदगोप उस बालकको लेकर अपने घर गया और स्त्रीसे कहने लगा कि उस देवताने प्रसन्न होकर मुझे बड़ा ही पुण्यवान पुत्र दिया है। यह कहकर अपनी स्त्रीको बालक सौंप दिया।

(४) कंसने सुना कि देवकीके पुत्री हुई है, सुनते ही वह तुरन्त दौड़ा आया। आते ही पहले तो उसकी नाक काट डाली। और फिर जमीनके नीचे तलघरमें बड़े प्रयत्नसे पालन करनेके लिये धायको सौंप दी।

(५) मथुरानगरमें अकस्मात् बहुतसे उत्पात होने लगे तब कंसने वरुण नामक निमित्तज्ञानीसे उसका फल पूछा। निमित्त ज्ञानीने कहा कि आपका बड़ा भारी शत्रु उत्पन्न होचुका है। इस बातको सुनकर उसे बड़ी चिंता हुई। तब उसने पहले जन्मकी मित्र देवियोंको स्मरण किया। देवियोंने आकर कहा—हमारे लिये क्या काम है? तब कंसने कहा कि—मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है, उसे ढूंढ़कर तुम मार आओ।

(६) उनमें पूतना नामकी एक देवीने विभंगा अवधिसे वासुदेवको जान लिया। उस दुष्टनीने माताका रूप धारण किया।

स्तनोंमें विष मिलाकर उन विष भरे स्तनोंको पिलाकर कृष्णको मारनेका विचार किया। वह बालकका पालन—पोषण करने लगी। परन्तु कृष्णके दूध पीते समय किसी दूसरी देवीने आकर उसके कुचोंमें ऐसी पीड़ा पहुंचाई कि जिसे वह सह न सकी और भाग-कर चली गई। इसके बाद दूसरे दिन दूसरी देवी गाड़ीका रूप धारण कर कृष्णके ऊपर आई, परन्तु कृष्णने लात मार कर तोड दी। एक दिन नंद गोपकी स्त्री कृष्णकी कमर एक ऊखलसे बांध कर जल लेने गई, परन्तु कृष्ण उसे तोड़ कर उसके पीछे २ गए। इसी समय बालकको पीड़ा देनेके लिए दो देवियोंने आकाशमें उड़नेवाले दो वृक्षोंका रूप बनाया, परन्तु कृष्णने उन दोनों वृक्षोंको जड़से उखाड़ कर फेंक दिया। इसी समय एक देवीने ताड़का रूप बना लिया और दूसरी फल बन कर कृष्णके मस्तक पर पड़नेको तैयार हुई। तीसरीने गधीका रूप बनाया और कृष्णको काटनेके लिये आई। परन्तु कृष्णने गधीके दोनों पैरों पर उस वृक्षको दे पटका। दूसरे दिन एक देवी घोड़ेका रूप बना कर उन्हें मारने आई, परन्तु कृष्णने क्रोधमें आकर उसका मुंह खूब ही ठोका। अंतमें उन सातों देवियोंने कंसके पास जाकर कहा कि हम उसे नहीं मार सकतीं और वे अपने स्थानको चली गईं।

(७) देवकी और वसुदेवने भी कृष्णका पौरुष सुना। वे दोनों बलभद्र तथा परिवारके साथ गोमुखी उपवासके बहाने बड़ी विभूति सहित गोकुल आए। आते ही उन्होंने एक बड़े भारी बलवान उन्मत्त बैलकी गर्दन पकड़कर लटकते हुए भी कृष्णको

देखा। उन्होंने उस बैलरूपी देवकी गर्दन तोड़ दी थी। श्री कृष्णको देखकर उन्होंने पहले तो गन्धमाला आदिसे उसकी मानता की, फिर बड़े प्रेमसे आभूषण पहिनाए और प्रदक्षिणा दी। उस समय देवकीके स्तनोंसे दूध निकलने लगा और अभिषेक करते समय श्रीकृष्णके मस्तक पर पड़ने लगा। उसे देखकर बलभद्र सोचने लगे कि इस तरह भेद खुलनेका डर है। वे बुद्धिमान कहने लगे कि उपवासके खेदसे या पुत्र मोहसे वह मूर्छित होगई है। इसके बाद कृष्णका अभिषेक किया। फिर व्रजके सब लोगोंका यथायोग्य आदर सत्कार किया और बड़ी प्रसन्नतासे गोपाल कुमारोंके साथ कृष्णको भोजन कराया और फिर वे सब मथुरा नगरको चल दिये।

(८) एक दिन व्रजमें पानी बहुत बरसा, तब कृष्णने गोवर्द्धन नामका पर्वत उठा कर उसके नीचे गायों तथा गोवालोंकी रक्षा की। इससे उनकी कीर्ति संसारमें फैल गई।

(९) एक दिन मथुरा नगरमें प्राचीन जिनालयके समीप पूर्व दिशाके अधिष्ठाताके देव मंदिरमें सर्प शय्या, धनुष और शंख ये तीन रत्न उत्पन्न हुए। उन तीनों रत्नोंकी देव रक्षा करते थे और वे तीनों रत्न कृष्णकी होनहार लक्ष्मीको सूचित करते थे। उन्हें देखकर मथुराका राजा कंस डरने लगा। और वरुण नामके निमित्त ज्ञानीसे उनके प्रगट होनेका फल पूछा। उसने कहा कि इसका सिद्ध करनेवाला आपका नाशक होगा। तब कंसने नगरमें यह घोषणा करा दी कि जो मनुष्य नाग शय्या पर चढ़कर एक हाथसे शंखको

पूरेगा और फिर इस धनुष्यको चढ़ा लेगा उसे मैं अपनी पुत्री दूंगा। श्री कृष्णने जब इन तीनों रत्नोंको प्राप्त किया तब उन्हें तलाश करनेवाले सिपाहियोंने निवेदन किया कि नंदगोपके पुत्रने ही ये तीनों काम एक साथ किए हैं।

(१०) शत्रुका निश्चय होजाने पर कंसने उसके जाननेकी इच्छासे नंद गोपको कहला भेजा कि नागराज जिसकी रक्षा करते हैं ऐसा एक हजार दलवाला कमलका फूल लाकर दो। यह सुनकर नंद गोपके शोकका पारावार न रहा। उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा कि तू ही उपद्रव करता रहता है, अब तू ही कमल लाकर राजा कंसको दे। श्रीकृष्णने कहा यह क्या कठिन काम है, मैं अभी ले आऊंगा। ये महानागोंसे सुरक्षित सरोवरमें निशंक होकर कूद पड़े। उन्हें आता देख यमराजके समान नागराज खड़ा होकर उन्हें निगलनेके लिये तैयार होगया। वह क्रोधसे कांप रहा था और श्वासोंसे अग्निके कण फैंक रहा था। कृष्ण जलसे भीगा हुआ पीतांबर उठा कर उसकी फणा पर धोने लगे। वह नागराज वज्रपातके समान उस पीतांबरके गिरनेसे छोटे पक्षीके समान डर गया और कृष्णके पूर्व पुण्य कर्मके उदयसे अदृश्य होगया। कृष्णने इच्छानुसार कमल तोड़े और कंसके पास पहुंचा दिए। कमलोंको देखकर कंसको निश्चय होगया कि मेरा शत्रु नंद गोपके समीप ही है।

(११) एक दिन कंसने नंदगोपालको कहला भेजा कि तुम अपने मल्लोंके साथ २ मल्ल युद्ध देखने आओ। नंदगोप कृष्ण आदि सब मल्लोंको लेकर निर्भय हो मथुराको चले। नगरमें घुसते ही

कृष्णकी ओर एक हाथी दौड़ा। वह हाथी मदोन्मत्त यमके समान था। उसे अपनी ओर दौड़ता हुआ देखकर कुमार कृष्णने खड़े होकर उसका एक दांत तोड़ लिया और फिर उसी दांतसे उसे मारने लगे जिससे वह हाथी डरकर भाग गया। गोपोंको उत्साहित कर वे कंसकी सभामें पहुंचे और अपनी सब सेना सजाकर एक जगह खड़े होगए। बलभद्र अपनी भुजाओंको ठोकते हुये कृष्णके साथ रङ्गभूमिमें उतरे और इधर उधर घूमने लगे। कंसकी आज्ञासे महा पराक्रमी चाणूर आदि मल्ल उठे और रङ्गभूमिके चारों ओर बैठ गए। कृष्णने अकस्मात् सिंहनाद किया। कृष्णको देखकर क्रोधित हुआ कंस मल्ल बनकर आया परन्तु कृष्णने उसके दोनों पैर पकड़ कर छोटे अंडेके समान आकाशमें फिराया और फिर उसे जमीन पर दे पटका। उसके प्राण पखेरू उड़ गये। उसी समय देवोंने पुष्पोंकी वर्षा की और जयके नगाड़े बजने लगे।

(१२) एक दिन जीवंयशा पतिके मरनेसे दुःखी होकर जरासिंधुके पास गई। अपने पतिकी मृत्युके समाचार पिताको सुनाए, सुनकर जरासिंधुको बहुत क्रोध आया और यादवोंको मारनेके लिए अपने पुत्रोंको भेजा। यादव भी अपनी सेना सजाकर युद्धको निकले, उन्होंने जरासिंधुके पुत्रोंको हरा दिया। तब फिर उसने अपराजित पुत्रको भेजा, वह भी हार गया। इसके बाद पिताकी आज्ञासे कालयवन नामक पुत्र चलनेको तैयार हुआ।

(१३) कालयवनको आता हुआ सुनकर अग्रसोची यादवोंने हस्तिनापुर, मथुरा और गोकुल तीनों स्थान छोड़ दिए। कालयवन

उनके पीछे २ जा रहा था तब यादवोंकी कुल-देवता बहुतसा ईंधन इकट्ठा कर बहुत ऊँची लौवाली अग्नि जलाकर एक बुढ़ियाका रूप बनाकर मार्गमें बैठ गई। उसे देखकर कालयवनने पूछा कि यह क्या है, तब बुढ़िया बोली कि हे राजन्! आपके डरसे यादवों सहित मेरे सब पुत्र इस ज्वालामें पड़कर जल गए हैं। बुढ़ियाकी बातें सुनकर कालयवनने सोचा, निश्चय ही मेरे भयसे सब शत्रु अग्निमें जल गए हैं। वह अपने देशको लौट गया।

(१४) यादवोंकी सेना समुद्रके किनारे पहुंची और अपना स्थान बनानेके लिये वहीं पर ठहर गये। फिर कृष्णने शुद्ध भावोंसे दर्भशय्या पर बैठ कर विधिपूर्वक मंत्रोंका जप करते हुये आठ दिनका उपवास किया। तब नैगम नामके देवने कृष्णसे कहा कि घोड़के आकारका एक देव आज आयेगा उसपर सवार होकर समुद्रमें बारह योजन तक चले जाना, वहांपर आपके लिये एक नगर बन जायगा। कृष्णने वैसा ही किया। कृष्णके पुण्य कर्मके उदय और तीर्थंकरकी उत्पत्तिके कारण इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने वहीं पर उसी समय एक मनोहर नगरी बनाई। उसका नाम द्वारावती रक्खा गया। उसमें पिता और बड़े भाइयोंके साथ कृष्णने प्रवेश किया। तथा सब यादवोंके साथ सुखसे रहने लगे।

(१५) एक दिन मगधदेशके रहनेवाले कुछ वैश्य पुत्र समुद्रका मार्ग भूल कर द्वारावतीमें आ पहुंचे। वहांकी राजलीला और विभूति देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने वहांसे बहुत अच्छे २ रत्न साथ लिये और राजगृह नगरमें पहुंचे। वहां उन्होंने

वे रत्न चक्ररत्नके स्वामी राजा जरासिंधुको भेंट किये। राजाने उन सबका आदर सत्कार करके पूछा कि यह रत्नोंका समूह तुम्हें कहांसे मिला। तब उन वैश्य पुत्रोंने कहा कि "समुद्रके बीचमें एक बहुत ही सुन्दर नगर है, उसका नाम द्वारावती है, इसमें यादवोंका राज्य है, उसी नगरसे ये रत्न हमें मिले हैं। यह सुनकर जरासिंधु क्रोधसे अन्धा होकर यादवोंका नाश करनेके लिए अपनी सब सेना लेकर चला।

(१६) नारदने बड़ी शीघ्रतासे उसी समय श्रीकृष्णके समीप जाकर जरासिंधुके आनेकी खबर सुनाई, सुनते ही कृष्ण शत्रुको मारनेके लिए तैयार होगए। वे अपनी सेना सजाकर जरासिंधुसे युद्ध करनेके लिए चल दिए, उनकी सेनामें पांचों पांडव आदि शूरवीर राजा थे।

(१७) जरासिंधु, भीष्म, कर्ण, द्रोण आदि राजाओंके साथ श्रीकृष्णके सामने युद्धके लिए पहुंचा। दोनों सेनाओंमें भयकर युद्ध हुआ। जरासिंधुने कृष्णके ऊपर अनेक शस्त्र चलाए पर उनका कुछ भी असर नहीं हुआ, तब क्रोधित होकर उसने उनपर सुदर्शन चक्र चलाया। चक्र श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा देकर उनकी दाहिनी भुजामें जाकर ठहर गया। श्रीकृष्णने उसी चक्रसे जरासिंधुका सिर काट डाला। उनकी सेनामें जीतके नगारे बजने लगे।

(१८) श्रीकृष्णने चक्ररत्नको आगे रख कर बलदेवजीको

साथ लेकर तीन खंडके विद्याधर, म्लेच्छ तथा देवताओंको अपने वशमें कर लिया। वे तीन खंडके स्वामी होकर रहने लगे।

(१९) श्रीकृष्णकी आयु एक हजार वर्षकी थी। दश धनुष ऊंचा शरीर था। नील कमलके समान शरीरका वर्ण था। चक्र, शक्ति, गदा, शंख, धनुष, दंड और तलवार ये उनके सात रत्न थे। उनके सोलह हजार रानियां थीं।

(२०) रत्नमाला, गदा, हल, मूसल ये चार महारत्न बलदेवके थे। उनके आठ हजार रानियां थीं।

(२१) एक समय कुछ यादवकुमार बाहर वनक्रीड़ाको गये थे। वे बहुत थक गये थे, प्यासकी पीड़ा उन्हें बहुत सता रही थी। उन सबने पास ही बावड़ी देखी। उस बावड़ीमें नगरकी सब शराब फैंक दी गई थी। उसके पानीको पीकर वे सब मदोन्मत्त होगये, उन्हें तन मनकी सुधि न रही। वे मस्त होकर जब लौटे तो उन्होंने द्वीपायन मुनिको देखा। द्वीपायन मुनिके द्वारा द्वारिका जलेगी ऐसा उन्होंने भगवान नेमिनाथके समवशरणमें सुना था। इसलिए मुनिको देखकर उनके मनमें क्रोध पैदा हुआ। वे द्वीपायनको पत्थरोंसे मारने लगे। मुनिराज बहुत देर तक मारको शांत भावसे सहते रहे परन्तु जब पत्थरोंकी मार और गालियोंकी वर्षा अधिक बढ़ती गई तब उन्हें क्रोध आगया। उन्होंने संकल्प किया कि मेरे योग बलसे यह सारी द्वारिका भस्म होजावे। उनके इतना कहते ही शरीरसे एक अग्निका पुतला निकला और उसने सारी द्वारिकाको भस्म कर दिया। केवल श्रीकृष्ण, बलराम और जरत्कुमार ही बचे।

(२२) श्रीकृष्ण और बलराम अपनी जान लेकर भागे और आकर जंगलमें एक पेड़के नीचे थक कर पडे रहे। उन्हें प्यासने सताया। बलराम उन्हें सोता छोड़कर पानी ढूंढनेको चले गये। श्री कृष्ण पेडके सहारे लेट रहे। उनके तलवेमें पद्मका चिह्न था, वह दूरसे चमक रहा था। जरत्कुमार भी इस वनमें आ निकला। उसने दूरसे चमकता हुआ पद्म देखा। उसे हिरणका नेत्र समझ कर उसने चट कमानपर तीर चढ़ाया और निशाना ताक कर इस तरह मारा कि श्रीकृष्णके पद्मको आर पार कर गया। श्रीकृष्ण चिल्लाए। उनका चिल्लाना सुनकर जरत्कुमार उनके पास आया। श्रीकृष्णको देखकर उसके होश गुम होगये। श्रीकृष्णने उससे कहा—भाई! बलराम पानी लेने गये हैं, वह न आने पायें, इससे पहिले ही तुम यहांसे चले जाओ, नहीं तो वह तुम्हें विना मारे न छोडेंगे। श्रीकृष्णकी आज्ञासे जरत्कुमार वहांसे चला गया। श्रीकृष्णकी मृत्यु होगई।

(२३) बलरामने उन्हें देखा तो वे उनके मोहमें पागल होगये। श्रीकृष्णके शवको लेकर वे लगातार छह महीने तक इधर उधर घूमते रहे। जब उन्हें एक देवने आकर संबोधित किया तब उनका मोह छूटा। और उन्होंने श्रीकृष्णका दाह कर्म किया।

(२४) श्रीकृष्ण मरकर तीसरे नर्क गये। बलरामने संसारसे उदास होकर तप किया और वे स्वर्ग गए।

पाठ ८।

प्रद्युम्नकुमार।

(१) प्रद्युम्नकुमारका जन्म श्रीकृष्णकी प्रधान पटरानी रुक्मणीके गर्भसे हुआ था।

(२) जिस समय प्रद्युम्नका जन्म हुआ उसी समय उनके पूर्व जन्मका शत्रु धूपकेतुदेव विमानपर बैठा जारहा था। अचानक श्रीकृष्णके महलपर आते ही उसका विमान रुक गया, उसने अवधिज्ञानसे अपने शत्रुको जानकर मायासे महलमें प्रवेश किया और बालक प्रद्युम्नको उठाकर आकाश मार्गसे ले गया। वह उसे मारनेकी इच्छासे एक विशाल शिलाके नीचे रखकर चला गया।

(३) विजयार्द्ध पर्वतके मेघकूट नगरका विद्याधर राजा कालसंभव अपनी रानी सहित घूमता हुआ उस शिलाके निकट आया। उस शिलाको हिलती देखकर उसे अचंभा हुआ। उसने अपने विद्याबलसे शिला उठाई और बालक प्रद्युम्नको उठाकर उसने अपनी रानीको दिया।

(४) रुक्मिणी तथा कृष्णको पुत्र वियोगका बहुत दुःख हुआ। परन्तु नारदके यह कहनेपर कि १६ वर्ष बाद पुत्र मिलेगा, उनका यह दुःख कम होगया।

(५) प्रद्युम्नकुमार जवान हुये उस समय उन्होंने कालशत्रुके प्रबलशत्रु अग्निराजको विजय किया। वे बहुमूल्य भूषणोंसे सजकर महलको आरहे थे कि उन्हें देखकर रानी कांचनमाला उनपर मोहित

होगई। उसने अपनी कामवासनाकी बातें प्रकट कीं और दो बहुमूल्य विद्याएं देनेका वचन दिया। प्रद्युम्नने विद्याएं तो ले लीं परन्तु उसे माता कहकर प्रणाम किया।

(६) कांचनमालाकी कामवासना पूर्ण न होनेसे उसने राजासे जाकर कहा कि कुमार मुझसे बलात्कार करना चाहता है। विचार-शून्य राजाने उसकी बात मानकर अपने पांचसौ पुत्रोंको हुक्म दिया कि तुम इसे किसी एकांतमें ले जाकर मार डालो।

(७) वे सभी पुत्र कुमारको मारनेके लिए सोलह भयंकर गुफाओं, बावड़ियों, तथा वनोंमें ले गए। वहांपर बड़े भयानक राक्षस, यक्ष तथा अजगर आदि रहते थे, वहां जाकर उन राक्षसों, यक्षों और अजगरोंको जीतकर प्रद्युम्नने अनेक विद्याएं, हथियार तथा आभूषण प्राप्त किए। जब उन सभी स्थानोंसे प्रद्युम्न लाभ लेकर जीते लौट आए, तब अन्तमें उन्होंने पातालमुखी बावड़ीमें फंसा कर मारनेका विचार किया। प्रद्युम्नने प्रज्ञप्ति नामकी विद्याको अपना रूप बना कर बावड़ीमें कुदा दिया और जब वे सब राजकुमार उसे मारने बावड़ीमें कूदे तब प्रद्युम्नने उस बावड़ीको एक बड़ी शिलासे ढक दिया और छोटे पुत्रको नगरमें भेज दिया और वे शिला पर बैठ गये।

(८) शिला पर बैठे हुये उन्होंने नारदको उतरते देखा। नारदने प्रद्युम्नको उनके माता पिता आदिका सारा हाल सुनाया। उसी समय कालसंभव विद्याधरने क्रोधित होकर अपनी सेना लेकर उसे घेर लिया पर प्रद्युम्नने सबको युद्धमें हरा दिया। और अंतमें अपना सब सच्चा हाल सुनाया। तब कालसंभवने प्रद्युम्नसे क्षमा

मांगी। उन्होंने राजासे द्वारिका जानेकी आज्ञा मांगी और वे नारदके साथ द्वारिकाको चल दिये।

(९) द्वारिका जाकर विद्यासे नारदको तो रथमें ही रोक दिया और आप बन्दरका रूप धारण कर अकेले ही नीचे आया। आते ही अपनी माता रुक्मिणिकी सौत सत्यभामाका बावन नामका बहु सुन्दर बाग उजाड डाला और उसमें बावडीका सब जल कमंडलुमें भर लिया। इसी तरह अनेक प्रकारके कौतूहल करता हुआ वह क्षुल्लकका रूप धारण कर अपनी माता रुक्मिणीके पास पहुंचा। और कहने लगा कि हे सम्यग्दर्शनको पालन करनेवाली मैं भूखा हूं, मुझे अच्छी तरह भोजन करा। उसके दिए हुए अनेक तरहके भोजन खाए परन्तु तृप्त नहीं हुआ। तब अन्तमें एक बड़ा मोदक खाकर संतुष्ट होकर वहां बैठ गया। उसी समय रुक्मिणीने देखा कि असमयमें ही चंपा, अशोक आदिके सब फूल फूल गए हैं। उन्हें देखकर रुक्मिणीको बहुत आश्चर्य हुआ। वह प्रसन्नचित्त होकर पूछने लगी कि क्या आप मेरे पुत्र हैं और नारदके कहे अनुसार ठीक समयपर आये हैं। माताको यह बात सुनकर प्रद्युम्नने अपना रूप प्रकट किया और माताके चरणोंमें मस्तक नवाया। माताकी इच्छानुसार अनेक तरहकी बालक्रीड़ाएं कर उसे प्रसन्न किया और वहीं ठहरा।

कुछ समय बाद अत्यंत बूढ़ेका रूप बनाकर वह गलीमें सोरहा और बलभद्रके जगानेपर अपने पैर लम्बेकर उन्हें ठगा। फिर मेढ़ेका रूप बनाकर बाबा वसुदेवका घोंटू तोड़ा और सिंह बनकर

(८) एकबार दुर्योधनने कपटसे लाखका महल बनवाया। वह महल पांडवोंको रहनेके लिये दे दिया गया।

(९) एक समय जब पांडव सोये थे, आधीरातको कौरवोंने उस महलमें आग लगवादी। पुण्ययोगसे पांडवोंको जमीनके नीचे एक सुरंग मिल गई। वे सुरङ्गके मार्गसे निकलकर बाहिर होगये। लोगोंने समझा कि पांडव जल चुके हैं, इससे सबको दुःख हुआ।

(१०) पांडव ब्राह्मणका वेष रखकर आगे चलकर गंगाके किनारे पहुंचे। वे एक नावपर चढ़कर गंगाके उस पार चलने लगे। नाव बीचधारमें पहुंचकर अचल होगई। धीवरसे पूछनेपर पांडवोंको मालूम हुआ कि यहां तुंडिका नामक जलदेवी रहती है, वह नावको रोककर भेंट मांगती है, इसे मनुष्यकी बलि चाहिए। यह सुनकर पांडवोंको बहुत दुःख हुआ। इसी समय भीम सबको सान्तवना देता हुआ गंगामें कूद पड़ा। तुंडी भयंकर मगरका रूप रखकर आई, दोनोंमें भयंकर युद्ध हुआ, अन्तमें भीमकी मारसे व्याकुल होकर तुंडी भाग गई। भीम गंगाको तैरकर आगया।

(११) गंगा पार कर पांडव अनेक स्थानोंपर भ्रमण करते हुए अपने पराक्रमका परिचय देते एक वनमें पहुंचे। वहां एक पिशाचसे युद्ध कर भीमने हिंडवा नामक कन्याकी रक्षा की और उससे पाणिग्रहण किया, जिससे घुटुक नामक पुत्र हुआ। वहां भी भीमने भीमासुर नामक राक्षसको जीता।

(१२) भ्रमण करते हुए पांडव माकन्दी नगरी पहुंचे। वहांका राजा द्रुपद था, उसकी द्रोपदी नामकी युवती कन्या थी,

राजाने उसका स्वयंवर रचा था। स्वयंवरमें दुर्योधन, कर्ण, यादव आदि सभी राजा आए थे। ब्राह्मण वेषधारी पांडव भी वहां आ पहुंचे। राजाने घोषणा की कि जो कोई गांडीव धनुषको चढ़ाकर राधावेध करेगा वही कन्याका वर होगा। किसी भी राजाका साहस धनुष चढ़ानेका नहीं हुआ, तब अर्जुन धनुष चढ़ानेके लिए उठा। उसने धनुष चढ़ाकर राधाकी नाकके मोतीको बातकी बातमें वेध डाला, तब द्रौपदीने अर्जुनके गलेमें वरमाला डाली, दैववशात् माला वायुके वेगसे टूट गई जिससे पासमें बैठे हुए चारों पांडवोंकी गोदमें उसके मोती पड़े। लोगोंने मूर्खतावश यह कह दिया कि इसने पांचों पांडवोंको वरा है। इससे अन्य राजा बहुत क्रोधित हुये। उन्होंने अर्जुनसे युद्ध करना चाहा परन्तु सभी पराजित हुये। अंतमें द्रोणाचार्य युद्ध करनेको तैयार हुये, तब अर्जुनने धनुषमें एक पत्र चिपका कर उन्हें आत्मपरिचय दिया। परिचय प्राप्त होने पर वे तथा सभी राजा बड़े प्रेमसे मिले और सबने मिलकर परस्पर क्षमा करा कर कौरव पांडवोंको मिला दिया। पांडव पांच ग्राम लेकर अलग रहने लगे।

(१३) एकबार श्रीकृष्णने अर्जुनको द्वारिका बुलाया। वहांपर श्रीकृष्णकी बहिन सुभद्राको देखकर वे मोहित होगये। वे सुभद्राका हरण कर लेआए। पश्चात् उसके साथ उनका विवाह हुआ।

(१४) एक समय दुर्योधनने कपटसे पांडवोंको बुलाकर उनसे जूआ खेलनेके लिये कहा। दोनोंमें पासा फिकने लगा कौरवोंका पांसा अनुकूल पड़ता था। परन्तु कभी २ भीमकी हुंकारसे

पांसा उलटा होजाता था इसलिए उन्होंने किसी बहाने भीमको बाहर भेज दिया और युधिष्ठिरका सारा राज्यपाट जीत लिया यहांतक कि युधिष्ठिरने अपनी रानियां और भाइयोंको भी रख दिया।

(१५) वे बारह वर्षको अपना सारा राज्य हार चुके थे। दुष्ट दुःशासन महलमें आकर द्रौपदीकी चोटी पकड़कर उसे महलसे बाहर सभामें खींच लाया। आंसू बहाती और रोती हुई द्रौपदी सभामें लाई गई। इससे भीम और अर्जुन बहुत क्रुद्ध हुए परन्तु युधिष्ठिरने सबको शांत कर दिया और वे सब द्रौपदीको साथ लेकर बनको चल दिए।

(१६) मलिन वस्त्र धारण कर अनेक स्थानोंपर भ्रमण करते हुए वे विराटनगरमें पहुंचे। उनसे बारह वर्ष भ्रमण करते हुए व्यतीत होचुके थे, अब एक वर्ष वे वेष बदलकर यहीं बिताने लगे। युधिष्ठिरने भोजन बनानेवाले रसोइया, अर्जुन नाटककी नायिका, नकुल घोड़ोंका रक्षक, सहदेव गोधन चरानेवाला और द्रौपदी मालिन बनकर रहने लगी।

(१७) एक समय विराटके साले कीचकने द्रौपदीको देखा, वह उसपर आसक्त होगया। जहां द्रौपदी जाती वहां वह उसके पीछे २ जाता और कामसे अन्धा होकर उसके साथ प्रेमकी बातें बनानेका यत्न करता। उसका यह कलुषित हाल देखकर द्रौपदीने उसे बहुत डांटा पर कीचकने इसपर कुछ ध्यान नहीं दिया। इसके बाद एक समय किसी एक सुने मकानमें उस दुष्टने द्रौपदीका हाथ पकड़ लिया और उससे अश्लीलताकी बातें करने लगा। उस वीर

तेइसवें तीर्थंकर श्री १००८ भगवान् पार्श्वनाथ।

नारीने झटका मारकर हाथ छुड़ा लिया और युधिष्ठिरके पास जाकर उस दुष्टके दुष्कृत्यको कहा। द्रौपदीकी बातें सुनकर युधिष्ठिरकी आंखें चढ़ गईं वह उसे सान्त्वना देने लगे। भीम द्रौपदीके ऊपर इस अत्याचारको सुनकर लाल होगया और कीचकके मारनेको तैयार होगया। उसने द्रौपदीसे कहा, कि तुम जाकर उससे कल रातको वनके एकांत स्थानमें आनेके लिये संकेत कर आओ। द्रौपदी कीचकके पास गई और उसने उस कपटीसे कहा कि मैं आपको चाहती हूं. आप रात्रिके समय नाट्यशालामें आना। रात्रि होने पर भीमने स्त्रीका वेष धारण किया और संकेत स्थानमें जाकर बैठा। काम पीड़ित कीचक भी आगया और उसने भीमका हाथ पकड़ा। भीमने उसे तुरन्त ही पकड कर जमीन पर पटक दिया। जिससे उसका उसी समय देहांत होगया।

(१८) इसी बीचमें दुर्योधनने अपयशके कारण अपने सेवकोंको पांडवोंकी खोजमें भेजा और भीष्मपितामहने पांडवोंको फिरसे हस्तिनापुर बुलानेकी सम्मति दी। इसी समय अविचारी जालंधर राजाने कहा—कि विराटका प्रचंड पक्षपाती कीचक किसी गंधर्व द्वारा मारा गया है, इसलिए मैं विराटकी गौ हरण करूंगा। उसने जाकर ग्वालोंसे सुरक्षित गोकुलको हर लिया। विराटने अपनी सेना लेकर जालंधरसे युद्ध किया। जालंधरने उसे युद्धमें पकड़ लिया तब भीम जालंधरसे युद्ध करनेको पहुंचा। उसने जालंधरकी सेना नष्ट कर भयंकर बाणोंकी वर्षा कर जालंधरको पकड़ लिया। जालंधरके पकड़े जानेसे दुर्योधन क्रोधित होकर सेना सहित युद्धके

लिए विराट देशको चला और उसका सारा गोधन हर लिया। विराटका पुत्र अर्जुनकी शरणमें आया और द्रोणाचार्य, तथा भीष्म-पितामहके समझानेपर भी कौरव पांडवोंमें भयानक युद्ध छिड़ गया और पांडवोंने कौरवोंको हराकर पीछे लौटा दिया।

(१९) विराटको निश्चय होगया कि वे पांडव हैं, तब उसने अपनी पुत्री उत्तराका अभिमन्युके साथ विवाह कर दिया। पांडव वहांसे चल दिए और द्वारिका पहुंचे।

(२०) द्वारिका जाकर अर्जुनने कौरवोंके छलको कृष्णजीसे कहा। कृष्णजीने दुर्योधनके पास एक दूतके द्वारा संदेशा भेजा कि आप मान छोड़कर कपट रहित होकर संधि कर लीजिए और आधा आधा राज्य बांट लीजिए। दुर्योधनने दूतको राज्यसे निकाल दिया और एक पैर पृथ्वी देनेसे भी इन्कार किया। इसके बाद ही पांडव यादवों सहित कौरवोंपर चढ़ाई करनेकी तैयारीमें लग गए।

(२१) पांडवोंके पक्षमें श्रीकृष्ण थे और कौरवोंके पक्षमें जरासिंधु था। पांडव श्रीकृष्णके साथ २ असंख्य सेना लेकर कुरु-क्षेत्रमें आपहुंचे। जरासिंधुने अपनी सेनामें चक्रव्यूहकी रचना की और पांडवोंकी सेनामें तार्क्ष्यव्यूह रचा गया। थोड़ी देरमें दोनों सेनाओंमें भयंकर युद्ध होने लगा।

(२२) अर्जुनके पुत्र अभिमन्युने चक्रव्यूहको भेदकर कौर-वोंकी सेनामें प्रवेश किया और एक क्षणमें ही अपने बाणोंसे सेनाको छेद डाला तब गांगेय और शल्य आदि महारथियोंने अभिमन्युके

सामने जाकर उसे रोका। इसी समय कौरवों और पांडवोंमें भयंकर युद्ध हुआ जिसमें अनेक महारथी मारे गए।

(२३) शिखण्डी द्वारा भीष्मपितामह मारे गए और जय-द्रथके द्वारा वीर अभिमन्यु मारा गया। इनकी मृत्युसे कौरव और पांडव दोनोंकी सेनामें महा शोक छागया। दूसरे दिन अर्जुनने जयद्रथको मारनेकी प्रतिज्ञा की। वह अर्जुनके द्वारा मारा गया। इसी प्रकार कौरवोंके द्रोणाचार्य, शल्य, कर्ण आदि महा प्रतापी सभी योद्धा मारे गए। अंतमें भीमकी गदा द्वारा दुर्योधन भी मारा गया और श्रीकृष्ण द्वारा जरासिंधुका वध हुआ।

(२४) द्रोण, कर्ण आदिको मृत्युके मुंहमें पड़े देखकर पांडव, श्रीकृष्ण तथा बलदेव बड़े शोकाकुल हुए, उन्होंने उसी समय उनकी दग्ध क्रिया की। पांडवोंको हस्तिनापुरका राज्य प्राप्त हुआ। उन्होंने बहुत समय तक राज्य किया।

(२५) बहुत समय तक राज्य करनेके बाद पांचों पांडवोंने श्री नेमिनाथस्वामीके पास मुनि दीक्षा धारण की।

(२६) एक समय जब वे ध्यानमें मग्न थे तब कुयुर्धर नामक राजपुत्रने उनपर महा उपसर्ग किया। उनके शरीर पर लोहेके जेवर गर्म करके पहनाए, परन्तु वे सब अपने आत्मध्यानमें मग्न होगए।

(२७) युधिष्ठिर, भीम और अर्जुनने मोक्ष प्राप्त किया और नकुल सहदेव सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुए।

पाठ १०।

पितृभक्त भीष्मपितामह।

(१) कुरुजांगल देशके राजा शान्तनु तथा रानी गंगाके गर्भसे देवव्रतका जन्म हुआ था। आप बड़े बलवान, साहसी, दृढ़ प्रतिज्ञ और पितृभक्त थे।

(२) एक समय राजा शान्तनु गंगानदीके किनारे क्रीड़ाके लिए जा रहे थे, वहां उन्होंने धीवरराजकी कन्या सत्यवतीको देखा। सत्यवती बड़ी ही सुन्दर और आकर्षक थी। उसे देखकर राजा उसपर मोहित होगए। वे अपने मंत्रीके साथ धीवरराजके यहां गए। वहां राजाके मंत्रीने धीवरराजसे अपनी कन्याका विवाह महाराज शान्तनुसे कर देनेको कहा। धीवरराजने अपनी कन्या देनेसे इन्कार किया। उसने कहा कि आपके पहली रानीसे एक महाप्रतापी पुत्र है, वह राज्यका स्वामी होगा। और मेरी कन्याके जो पुत्र होगा वह उसका दास बनकर रहेगा। इसलिए मैं अपनी कन्या नहीं दे सक्ता। राजा वापिस चले आए, परन्तु सत्यवतीके न मिलनेसे उनको बड़ी वेदना हुई।

(३) पिताकी वेदनाका हाल देवव्रतको मालूम हुआ। वे धीवरराजके यहां गए और पिताजीको अपनी कन्या देदेनेका आग्रह किया। परन्तु धीवरराजने कहा कि आपके होते हुए मैं अपनी कन्या नहीं देसक्ता।

(४) देवव्रतने धीवरराजसे कहा कि आप निश्चिंत रहिए। मैं अपने राज्यका अधिकार छोड़ता हूं और प्रतिज्ञा करता हूं कि आपकी कन्याका पुत्र ही राज्यका स्वामी होगा। धीवरराजने कहा—यह तो ठीक है, परन्तु आपका विवाह होगा और आपके जो संतान होगी उसने कहीं राज्य छीन लिया तो मेरी कन्याके पुत्र क्या कर सकेंगे? यह सुनकर देवव्रत कुछ समयको विचारमें पड़ गए। फिर वह दृढ़तापूर्वक बोले- धीवरराज! मैं तुम्हारी यह आशंका भी दूर किए देता हूं। लो, तुम सुनो, देवता सुनें, और सारा संसार सुने। मैं आज यह प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं आजीवन विवाह नहीं कराऊंगा, और जीवनभर ब्रह्मचारी रहूंगा।

(५) देवव्रतकी यह कठिन प्रतिज्ञा और पिताकी भक्ति देखकर धीवरराज आश्चर्यमें पड़ गया। उसने अपनी कन्या राजा शांतनुको देना स्वीकार की। उसी दिनसे देवव्रतका भीष्म नाम पड़ गया।

(६) भीष्मका विवाह काशीनरेशकी कन्या अंबा तथा अंबालिकासे होना निश्चित था, परन्तु उन्होंने अपनी प्रतिज्ञाको जीवन भर बड़ी दृढ़तासे निबाहा। उन कन्याओंने भीष्मको अपनी प्रतिज्ञासे कईबार चलित करना चाहा, परन्तु वे अपनी प्रतिज्ञामें निश्चल रहे। ब्रह्मचर्यके प्रतापसे उनमें अद्वितीय शक्ति और तेज था। वृद्धावस्थामें भी उनकी वीरता और साहसकी समानता करनेवाला कोई व्यक्ति नहीं था।

पाठ ११।

एक मांसभक्षी राजा।

(१) श्रुतपुर नगरका राजा बक था। उसे मांसभक्षणका दुर्व्यसन पड़ गया था। वह गुप्त रूपसे मांसभक्षण किया करता था।

(२) एकबार उसके रसोइएने मांस पकाकर रक्खा। इसी समय एक कुत्ता उसे उठा कर लेगया। रसोइएको बड़ी चिंता हुई। वह श्मशान भूमिमें गड़े हुए एक बालकके शरीरको लेआया और उसका मांस राजाको खिलाया। राजाको वह मांस बहुत स्वादिष्ट लगा और उसने अपने रसोइएसे कहा कि मुझे इसी प्रकारका मांस खिलाया करो।

(३) रसोइया कुछ लोभ देकर अपने यहां नगरके बालकोंको बुलाता और अन्तमें एक बालकको एकांतमें मार कर उसका मांस राजाको खिलाता।

(४) कुछ समय बाद नगरके बालक कम होने लगे तब नगरनिवासियोंने बालकोंकी खोज की। खोज करने पर उन्हें राजाके मांस भक्षणका पता लगा। उन्होंने मिलकर राजाको राज्यसे निकाल दिया।

(५) बक राजा जंगलोंमें रहने लगा और नगरमें जाकर मनुष्योंको पकड़ कर खाने लगा। वह बहुत बलवान था इसलिए उसका कोई सामना नहीं कर सकता था। तब नगरनिवासियोंने

उसके लिए प्रत्येक घरसे एक २ मनुष्यकी बारी बांध दी। और बारीके दिन एक मनुष्य उसकी भेंट होने लगा।

(६) एक समय एक वैश्य स्त्रीके पुत्रकी बारी थी। उसके वही अकेला पुत्र था, इसलिए वह उसके वियोगसे दुःखी होकर विलाप कर रही थी। उस वैश्य स्त्रीके यहां उस दिन पांचों पांडव तथा माता कुन्ती ठहरी थी, उसने उसका दुःख सुनकर उसका कारण जानकर भीमको सभी हाल सुनाया। भीम सबको दिलासा देकर बकराक्षसके पास निर्भय होकर गया। भीमने बकसे युद्ध किया और उसे पृथ्वीपर पछाड़कर उसकी छातीपर चढ़ गया। बकने क्षमा मांगी और मांस न खानेकी प्रतिज्ञा की तब भीमने उसे छोड़ दिया। उस दिनसे बकने फिर कभी मांस नहीं खाया।

पाठ १२।

बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त।

(१) काम्पिल्यनगरके राजा ब्रह्मरथ रानी चूलादेवीके गर्भसे ब्रह्मदत्तका जन्म हुआ था। उनका शरीर सात धनुष्य ऊंचा और सो वर्षकी आयु थी।

(२) इनके चौदह रत्न और नवनिधिएं आदि थीं। इन्होंने छहों खण्डोंको विजय किया था। बत्तीसहजार राजा इनके आधीन थे। छयानवेहजार रानियां थीं।

(३) एक दिन चक्रवर्ती भोजन करने बैठे, उस समय

रसोइएने खीर परसी, खीर कुछ गर्म थी, इतनी गर्म खीर देखकर गुस्सेसे उस बर्तनको रसोइएके सिरपर दे मारा, रसोइया मरकर व्यंतरदेव हुआ ।

(४) अपना पूर्वजन्मका हाल जानकर वह व्यंतर सन्यासीके वेषमें राजाके पास आया और बहुतसे फल लाया । राजाको फल स्वादिष्ट लगे, उसने फलोंकी उत्पत्तिके विषयमें पूछा । सन्यासीने कहा—महाराज ! मेरा घर टापूमें है, वहां एक सुन्दर बगीचा है, उसीके ये फल हैं । राजा सन्यासीके साथ टापूकी ओर चला । जब वह समुद्रके बीचमें पहुंचा तब उसने राजाके मारनेको उसे समुद्रमें डुबोना चाहा, परन्तु णमोकार मंत्र जपनेके कारण वह उसका कुछ न कर सका । अन्तमें ब्रह्मदत्तने व्यंतरके कहने पर णमोकार मंत्रका अपमान किया, जिससे उसने चक्रवर्तीको उसी समय मारकर समुद्रमें फेंक दिया । चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक गया ।

पाठ १३ ।

भगवान् पार्श्वनाथ ।

तेईसवें तीर्थंकर ।

(१) भगवान् नेमिनाथके मोक्ष जानेके बाद तेरासी हजार सातसौ पचास वर्ष बीत जाने पर भगवान् पार्श्वनाथ हुए ।

(२) भगवान्के पिताका नाम विश्वसेन और माताका नाम ब्राह्मीदेवी था । वे बनारसके राजा काश्यपगोत्री थे ।

(३) भगवान् पार्श्वनाथ वैशाख कृष्ण द्वितीयाके दिन विशाखा नक्षत्रमें गर्भमें आए। माताने सोलहस्वप्न देखे। गर्भमें आनेके छह माह पहिलेसे जन्म होने तक देवोंने रत्नवर्षा की और गर्भमें आने पर गर्भकल्याणक उत्सव मनाया। माताकी सेवामें देवियां रहती थीं।

(४) पौष कृष्णा एकादशीको भगवान् पार्श्वनाथका जन्म हुआ। इन्द्रादि देव भगवान्को सुमेरुपर लेगये। और जन्मकल्याणक उत्सव मनाया। आप जन्मसे ही मतिज्ञानादि तीन ज्ञानयुक्त थे।

(५) आपकी आयु सौ वर्षकी थी और शरीर नौ हाथ ऊंचा था। आपके शरीरका वर्ण हरित था।

(६) एक दिन कुमार अवस्थामें आप सब सेनाके साथ क्रीड़ा करने नगरके बाहिर आश्रम वनमें गए थे। वहां महीपाल नगरका राजा जो अपनी पटरानीके वियोगमें दुखी होकर तपसी हो गया था पंचाग्निके मध्य बैठा, तपश्चरण कर रहा था। उसे देखकर आप उसके समीप गये और उसे विना ही नमस्कार किये खड़े रहे। अपना इस तरह अनादर देखकर महीपाल तपस्वीको क्रोध आया और वह विचार करने लगा कि मैं गुरु हूं, कुलीन हूं, तपोवृद्ध हूं, और इसकी माताका पिता हूं। तौभी इस मूर्ख कुमारने मुझे नमस्कार नहीं किया। इस तरह क्रोधित होकर उस मूर्ख तपस्वीने शांत हुई अग्निमें डालनेके लिये लकड़ी काटनेको एक बड़ी कुल्हाड़ी उठाई। तब अवधिज्ञानसे जानकर कुमार पार्श्वनाथने

कहा कि इस लकड़ीको मत काटो, इसमें एक सर्प और सर्पिणी हैं। आपके रोकनेपर भी उस तपस्वीने कुल्हाड़ी चलाई। उसकी चोटसे उस लकड़ीमें बैठे हुए सर्प सर्पिणीके दो टुकड़े होगये। उसे देखकर आपने कहा कि इस अज्ञान तपसे इस लोकमें दु.ख होगा और परलोकमें भी दुःख मिलेगा। तुम्हें इस बातका अभिमान है कि मैं गुरु हूं, तपस्वी हूं, परन्तु तुमने अज्ञानतासे इन जीवोंकी हिंसा कर डाली। ये वचन सुनकर उस तपस्वीको और भी क्रोध आया। वह बोला कि तुम मेरे तपश्चरणकी महिमा नहीं जानते इसीलिए ऐसा कहते हो, मैं पंचाग्निके मध्य बैठता हूं, वायु भक्षण कर जीवित रहता हूं, ऊपरको भुजाकर एक ही पैरसे बहुत देरतक लटकता हूं। इस तरहके तपश्चरणसे और अधिक तपश्चरण नहीं होसकता। तब कुमारने हंसकर कहा—हमने न तो आपको गुरु ही माना है और न तिरस्कार ही किया है। किन्तु जो आप्त-आगमको छोड़कर वनमें रहते; मिथ्यात्व, क्रोध, मान, माया, लोभ और हिंसा करते हैं, उन्हें विना सम्यग्ज्ञानके कायक्लेश दुःखका ही कारण होता है। इस तरह आपके कहनेपर उस विरुद्ध बुद्धिवाले मूर्ख तपस्वीने पहिले जन्मका वैर संस्कार होनेके कारण दुष्ट स्वभावसे कुछ ध्यान नहीं दिया। तब कुमारने सर्प सर्पिणीको समझाकर समताभाव धारण कराया और उन्हें णमोकार मंत्र दिया। वे दोनों मरकर बड़ी विभूतिके धारी धरणेन्द्र पद्मावती हुए।

(७) एक दिन अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवोंको जानकर आपको वैराग्य उत्पन्न हुआ तब लौकान्तिक देवोंने आकर स्तुति

की। और इन्द्रादि देवोंने दीक्षा कल्याणकका महोत्सव किया।

(८) पार्श्वनाथ भगवानने विमला नामकी पालकीमें बैठकर अश्ववनमें आकर पौष कृष्ण एकादशीको तीनसौ राजाओंके साथ दीक्षा धारण की। उसी समय आपको मन:पर्यय ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। तीन दिनका उपवास कर गुल्मखेटपुरके राजा धन्यके यहाँ आहार लिया। इन्द्रादि देवोंने राजाके यहाँ पंचाश्चर्य किये। चार माह तक आप छद्मस्थ अवस्थामें रहे।

(९) एक समय सात दिनका योग धारण कर वे उसी वनमें देवदारुके वृक्षके नीचे धर्मध्यानमें लग रहे थे। इसी समय वह महाबल तपस्वी जो खोटे तपसे मरकर संवर नामक ज्योतिषी देव हुआ था, आकाश मार्गसे जा रहा था, परन्तु भगवानके ऊपरसे जानेके कारण उसका विमान रुक गया। तब उसने विभंगावधिसे पार्श्वनाथजीको जानकर पहले भवके वैरका संस्कार होनेके कारण वह बड़ा क्रोधित हुआ। उस दुर्बुद्धिने बड़ा भयंकर शब्द किया और घनघोर वर्षा की। वह सात दिन महा गर्जना और महा वर्षा करता रहा। इसके सिवाय उसने पत्थरोंकी वर्षा आदि अनेक तरहके महोपसर्ग किए। अवधिज्ञानसे उस उपसर्गको जानकर उसी समय पद्मावतीके साथ धरणेन्द्र आया और देदीप्यमान रत्नोंके फणामंडपसे उसने चारों ओरसे ढककर भगवानको ऊपर उठा लिया तथा उसकी देवी पद्मावती अपने फणाओंके समूहका वज्रमयी छत्र बनाकर बहुत ऊंचा उठाकर खड़ी रही।

(१०) भगवानने ध्यानमें तल्लीन होकर चैत्र कृष्णा १४को केवलज्ञान प्राप्त किया।

(११) इन्द्रादि देवोंने आकर समोशरणकी रचना की। वह संवर नामक ज्योतिषी देव भी अत्यंत शांत होगया और मिथ्यात्व छोड़कर उसने भगवानकी प्रदक्षिणा की और सम्यग्दर्शन स्वीकार किया।

(१२) भगवानकी सभामें इस भांति चतुर्विध संघ था—

१० स्वयंभुव आदि गणधर
३५० पूर्वधारी मुनि
१०९०० शिक्षक मुनि
१४०० अवधिज्ञानके धारी
७५० मन:पर्ययज्ञानी
१००० केवलज्ञानी
१००० विक्रिया ऋद्धिके धारी
६०० वादी मुनि
३६००० सुलोचना आदि आर्यिका
१००००० श्रावक
३००००० श्राविकाएं

(१३) आयुके एक मास शेष रहनेतक आपने समस्त आर्यखण्डमें विहार किया और विना इच्छाके दिव्यध्वनिद्वारा धर्मोपदेश आदिसे प्राणियोंका हित किया।

(१४) जब आयुका एक मास शेष रहा तब दिव्यध्वनि होना बन्द हुई और सम्मेदशिखर पर्वतपर इस एक माहमें शेष कर्मोंका नाश कर छत्तीस मुनियों सहित श्रावण शुक्ला सप्तमीको मोक्ष पधारे। इन्द्रादि देवोंने निर्वाण कल्याणक किया।

पाठ १४।

भगवान् महावीर।

चौवीसवें तीर्थंकर।

(१) भगवान् पार्श्वनाथके बाद दोसौ पचास वर्ष बीत जाने पर श्री महावीर भगवान्का जन्म हुआ।

(२) भगवानके पिताका नाम सिद्धार्थ और माताका नाम रानी प्रियकारिणी था। आप कुंडलपुरके राजा इक्ष्वाकु वंशी थे।

(३) अषाढ़ शुक्ला ६ को आप गर्भमें आए। गर्भमें आनेके छह माह पूर्वसे जन्म होने तक स्वर्गसे रत्नोंकी वर्षा होती रही। देवियां माताकी सेवा करने लगीं। गर्भमें आनेपर माताने सोलह स्वप्न देखे। इन्द्रादि देवोंने गर्भकल्याणक उत्सव मनाया।

(४) आपका जन्म चैत्र सुदी १३को हुआ। जन्मसे ही आप तीन ज्ञानके धारी थे। इन्द्रादि देवोंने आपका जन्मकल्याणक उत्सव मनाया।

(५) आपकी आयु ७२ वर्षकी थी और शरीर सात हाथ ऊंचा था। आपके लिए वस्त्राभूषण स्वर्गसे आते थे और वहांसे देवगण क्रीड़ा करनेको आया करते थे।

(६) एकबार संजय और विजय नामके दो चारण मुनियोंको किसी पदार्थमें संदेह उत्पन्न हुआ। वे भगवानके जन्मके बाद ही उनके समीप आए और भगवानके दर्शन मात्रसे ही उनका संदेह दूर होगया इसलिए उन्होंने बड़ी भक्तिसे उनका सन्मति नाम रक्खा।

(७) एक दिन इन्द्रकी सभामें देवोंमें परस्पर यह कथा चली कि इस समय सबसे शूरवीर श्री वर्धमानस्वामी हैं। इसे सुनकर संगम नामक एक देव उनकी परीक्षाके लिए आया। उस समय भगवान महावीर बालकोंके साथ बनमें वृक्षपर चढ़ने उतरनेका खेल खेल रहे थे। उस देवने उन्हें डरानेकी इच्छासे महा भयंकर नागका रूप धारण किया और वह वृक्षकी जड़से लेकर स्कंधतक लिपट गया। उसे देखकर सब बालक डरसे घबड़ाकर वृक्षसे पृथ्वीपर कूदकर भाग गए। उस समय बालक वीरनाथ उस महा भयानक सर्पके मस्तकपर बैठ गए। उस देवने भगवान्‌का महावीर नाम रखकर उनकी स्तुति और भक्ति की।

(८) आप तीस वर्षतक कुमारकालमें रहे। आपका विवाह नहीं हुआ था। एक दिन मतिज्ञानके विशेष क्षयोपशमसे उन्हें आत्मज्ञान प्रगट हुआ। उस समय यज्ञमें जीव होमे जाने लगे थे, बलिदानके नामसे जीवोंकी बलि दी जाती थी और घोर हिंसाके भाव फैल गए थे। इन सब बातोंको देखकर उनका हृदय करुणासे भर आया, उनके मनमें संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसी समय लौकान्तिक देवोंने आकर नियमानुसार उनकी स्तुति की और

इन्द्रादि देवोंने आकर उनका दीक्षा कल्याणक उत्सव मनाया।

(९) अगहन वदी १० के दिन षंड नामके वनमें दीक्षा धारण की, उसी समय आपको मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति हुई।

(१०) तीन दिनका उपवास कर कुल ग्राम नगरके राजा कूलके यहां आहार लिया। देवोंने राजाके घर पंचाश्चर्य किए।

(११) एकदिन विहार करते हुये भगवान महावीरने अति-मुक्तक नामक श्मशानमें प्रतिमायोग धारण किया। उन्हें देखकर महादेव नामक रुद्रने उनके धैर्यकी परीक्षा लेनेके लिये महा उपसर्ग किया। उसने अपनी विद्याके बलसे अंधेरा कर दिया। फिर अनेक वेताल आकर तीक्ष्ण दांतोंको निकाल मुह फाड़ अत्यंत भयानक रूपसे नाचने लगे। कठोर शब्द, अट्टहास्य तथा विकराल दृष्टिसे देखकर डराने लगे। इसके बाद सर्प, हाथी, सिंह, अग्नि और वायु आदिके साथ भीलोंकी सेना बनकर आई और घोर शब्द करने लगी। इस तरह अपनी विद्याके प्रभावसे उस महादेवने अनेक भयानक उपसर्ग किए, परन्तु वह भगवानके चित्तको समाधिसे नहीं हिगा सका। उस समय उसने भगवानका नाम अतिवीर रक्खा और अनेक तरहकी स्तुति तथा नृत्य किया और अभिमान छोड़-कर अपने स्थानको चलागया।

(१२) एक दिन कौशांबी नगरीमें भगवान महावीर आहा-रके लिए आए। उन्हें देखकर चन्दना नामक महासती राजकन्या जो वृषभदत्त सेठके यहाँ कैदमें थी, मिट्टीके सकोरेमें कोदोंका भात रखकर आहारके लिए खड़ी हुई। भगवानको देखते ही उसकी

सांकलके सब बन्धन टूट गए। भक्ति रससे नम्र होकर चन्दनाने नवधा भक्तिसे उनका पड़गाहन किया। उसके शीलके माहात्म्यसे मिट्टीका सकोरा सुवर्णका होगया और कोदोंका भात चांवलोंका होगया। उसने विधिपूर्वक भगवानको आहार दिया इससे उसके यहां पंचाश्चर्य हुए।

(१३) बारह वर्षतक छद्मस्थ अवस्थामें रहकर आपने तपश्चरण किया। वैशाख सुदी १० के दिन मनोहर नामक वनमें शाल वृक्षके नीचे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ। इन्द्रादि देवोंने समवशरणकी रचना की और ज्ञान कल्याणक उत्सव मनाया।

(१४) तीन घण्टे तक भगवान्‌की दिव्यध्वनि प्रकट नहीं हुई। इन्द्रने दिव्यध्वनि न होनेका कारण जान लिया कि गणधर न होनेके कारण ही दिव्यध्वनि नहीं होती है। वे उसी समय गौतम गणधरकी खोजमें ब्राह्मणका रूप धारणकर ब्राह्मण नगरके शांडिल्य ब्राह्मणके गौतम नामक पुत्रके पास आए। गौतम वेद वेदाङ्गोंके ज्ञाता महा बुद्धिमान थे। गौतमके पास आकर इन्द्र ब्राह्मणने कहा कि मेरे गुरु एक श्लोक कहकर समाधिमें मग्न होगए हैं, आप यदि उस श्लोकका अर्थ बतला सकें तो बतला दीजिए।

गौतमने कहा—आप श्लोक कहिए, मैं उसका अर्थ अवश्य ही बतलादूंगा। तब ब्राह्मणने कहा—पहले आप इस तरहकी प्रतिज्ञा करें कि अगर आपने मेरे श्लोकका अर्थ बतलादिया तो मैं आपका शिष्य होजाऊंगा और अगर आपने अर्थ नहीं बतलाया तो आपको मेरे गुरुका शिष्य बनना पड़ेगा। गौतमने इस बातको स्वीकार

चौवीसवें तीर्थंकर श्री १००८ भगवान् महावीरस्वामी।

किया। तब ब्राह्मणने एक श्लोक पढ़ा जिसका अर्थ गौतमकी समझमें नहीं आया तब उन्होंने कहा कि मुझे अपने गुरुके पास मुझे ले चलो, मैं वहीं इसका अर्थ बतलाऊँगा। इन्द्र गौतमको भगवान् महावीरके समोशरणकी ओर ले चला। मानस्तंभको देखते ही गौतमका मानभंग होगया। उसका मन सरल होगया। समोशरणमें जाकर भगवान महावीरकी शांत मुद्राका दर्शन करते ही उसका मिथ्यात्व नष्ट होगया। उसने भगवानको बड़ी भक्तिसे नमस्कार किया और उनसे धर्मका स्वरूप पूछा। धर्मका रहस्य जानकर उसने तुरन्त ही दीक्षा धारण की और अपने पांचसौ शिष्योंको भी दीक्षा दिलवाई। परिणामोंकी विशेष विशुद्धिके कारण उसी समय उन्हें सात ऋद्धियां प्राप्त हुईं। श्रावण कृष्ण प्रतिपदाके दिन सवेरेके समय उन्हें सब अंगोंका ज्ञान होगया और उसी दिन संध्याको सब पूर्वोंके अर्थ और पदोंका ज्ञान होगया। वे भगवान महावीरके प्रथम गणधर हुए।

(१५) भगवान महावीरने ३० वर्षतक अनेक देशोंमें भ्रमण कर अहिंसा धर्मका उपदेश दिया जिससे सारे भारतवर्षसे यज्ञ और बलिदानकी प्रथा नष्ट होगई।

(१६) आपके समोशरणमें इस प्रकार चतुर्विध संघ था—

११ गौतम आदि गणधर
३११ द्वादशांग ज्ञानके धारी
९९०० शिक्षक मुनि
१३०० अवधिज्ञानी

९०० विक्रिया रिद्धिके धारी
५०० मन:पर्यय ज्ञानके धारी
४०० वादी मुनि
७०० केवलज्ञानी

१४०००

३६००० चन्दना आदि आर्यिकायें
१००००० श्रावक
३००००० श्राविकायें

(१७) जब आयुका एक मास शेष रहा तब दिव्यध्वनि होना बंद हुआ और पावागिर पर्वतपर इस एक माहमें शेष कर्मोंका नाशकर कार्तिक कृष्ण अमावस्याको मोक्ष प्राप्त किया। इन्द्रादि देवोंने निर्वाण उत्सव मनाया। इसी दिन संध्याको गौतम गणधरको केवलज्ञान प्राप्त हुआ जिसका उत्सव इन्द्रादि देवोंने रत्नदीपक जलाकर किया। उसी दिनसे दीपावली नामक पर्व मनाया गया।

पाठ १५।

महाराजा श्रेणिक।

(१) मगध देशके राजा उपश्रेणिक थे, उनकी राजधानी राजगृह थी। यह बड़े शूरवीर और धर्मात्मा थे। उपश्रेणिककी रानी इन्द्राणीसे महाराज श्रेणिकका जन्म हुआ था। वे प्रतापी, बुद्धिमान और बलवान थे।

(२) एक समय महाराज उपश्रेणिक एक नए घोड़ेकी परीक्षा कर रहे थे। वह घोड़ा उन्हें एक अनजान जगहपर ले भागा और उन्हें एक गहन वनमें जा पटका। भीलोंके राजा यमपालने उन्हें अपने घर रक्खा। महाराज उपश्रेणिक उसकी सुन्दर कन्यापर मुग्ध होगए। यमपालने इस शर्तपर कि उसका पुत्र ही राज्याधिकारी हो, उपश्रेणिकको कन्या विवाह दी। तिलक-वतीके चिलाती पुत्र नामक पुत्र हुआ उसे राज्य अधिकार मिला।

(३) कुमार श्रेणिकको कुछ दोष लगाकर देशनिकालेका दंड मिला। वे राजगृहसे निकलकर नंदिग्राम पहुचे, वहांके ब्राह्मणोंने उनको आश्रय नहीं दिया। इसलिए वे आगे चलकर बौद्ध सन्यासियोंके आश्रममें गए और वहां कुछ समयतक रहे। बौद्ध आचार्यके मीठे वचनोंके प्रभावसे कुमार श्रेणिकने बौद्ध धर्म स्वीकार किया और वे बौद्ध धर्मके पक्के अनुयायी होगए।

(४) कुछ दिन वहां रहकर वे इन्द्रदत्त सेठके साथ चल दिए। इन्द्रदत्तके नंदश्री नामकी सुन्दरी गुणवान कन्या थी। वह श्रेणिकके गुणोंपर मुग्ध होगई। इन्द्रदत्तने उसका विवाह कुमार श्रेणिकके साथ कर दिया और वे वहीं रहने लगे। वहां उनके अभयकुमार नामक पुत्र हुआ।

(५) महाराज उपश्रेणिकके देहांत होनेपर चिलाती पुत्र राजा हुआ, वह प्रजापर मनमाने अत्याचार करने लगा जिससे दुःखी होकर प्रजाने कुमार श्रेणिकको बुलाया। श्रेणिकका आगमन

सुनकर चिलाती भयभीत होकर भागगया। श्रेणिक राजा हुए और बौद्धधर्मका पालन करते हुए राज्य करने लगे।

(६) केरल नगरीके राजा मृगांककी पुत्री विलासवतीसे राजा श्रेणिकका विवाह हुआ, जिससे कुणिक (अजातशत्रु) नामक पुत्र हुआ।

(७) वैशाली नगरीके राजा चेटककी चेलना नामक गुणवती कन्यासे राजा श्रेणिकका विवाह हुआ। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि वह बौद्धधर्मानुयायी है तो उसे बड़ा दुःख हुआ। राजा श्रेणिकने उसे अपने गुरुओंकी विनय पूजा करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता दे दी।

(८) एक दिन महाराजा श्रेणिक शिकार खेलने गये थे। उन्होंने मार्गमें एक ध्यानमग्न दिगम्बर मुनिको देखा। उन्होंने उनके गलेमें मराहुआ सांप डाल दिया और वापिस चले आए। जब रानी चेलनाने यह समाचार सुना तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसकी आंखोंसे आंसु बहने लगे।

श्रेणिकने कहा—प्रिये ! तू इस बातका जरा भी रंज मत कर। वह मुनि गलेसे सर्प फेंककर कबका चला गया होगा। महाराजके ये वचन सुनकर रानीने कहा—नाथ ! आपका यह कथन गलत है। मेरा विश्वास है कि यदि वे मेरे सच्चे गुरु हैं तो उन्होंने अपने गलेसे सर्प कभी भी न निकाला होगा। इसपर श्रेणिक रानीके साथ उसी समय वहां गए। वहां जाकर उन्होंने मुनिको उसी तरह ध्यानमग्न देखा। वह मृतक सर्प उनके गलेमें उसी तरह पड़ा था। उसमें चीटियां पड़ गईं थीं।

(९) राजा रानीने भक्तिसे मुनि महाराजको नमस्कार किया। उन्होंने दोनोंको समान रूपसे आशीर्वाद दिया और धर्मका उपदेश दिया। राजा श्रेणिकपर उनकी तपस्या और उपदेशका बड़ा असर पड़ा और उन्हें जैन धर्मपर श्रद्धा होगई। परन्तु बौद्ध आचार्योंके समझानेपर उन्हें पुनः बौद्ध धर्ममें रुचि हुई। उन्होंने अनेक तरह जैन साधुओंकी परीक्षा ली और उनके उन्नत चरित्रको देखकर अंतमें उन्हें जैन धर्मपर पूर्ण श्रद्धा होगई।

(१०) राजा श्रेणिक पक्के श्रद्धानी होगए, वे भगवान महावीरके प्रधान भक्तोंमेंसे थे। उन्होंने भगवानके केवलज्ञान होने पर समोशरणमें जाकर धर्मचर्चा संबन्धी अनेक प्रश्न पूछे थे। अंतमें महाराज श्रेणिक प्रधान श्रावक होगए और वे धर्मकी प्रभावनामें निशदिन तल्लीन रहने लगे।

(११) श्रेणिकके कुणिक नामक पुत्र था, जिसके गर्भमें आने पर ही अनेक अशुभ लक्षणोंसे मालूम होगया था कि यह राजाका शत्रु होगा। श्रेणिकने बड़े समारोहके साथ कुणिकको राजभार दे दिया।

(१२) पूर्वजन्मके वैरके कारण कुणिक महाराज श्रेणिकको अपना शत्रु समझने लगा और एक दिन उसने बड़ी निर्दयतासे उन्हें काठके पींजरमें बंद कर दिया। उन्हें खानेके लिये सूखा सूखा कोदोंका भोजन देने लगा और भोजनके समय कुवचन भी कहने लगा। महाराजा श्रेणिक चुपचाप पींजड़ेमें पड़े रहते और आत्मस्वरूपका विचार कर पूर्व पापके फलको भोगते थे।

(१३) रानी चेलनीने कुणिकको बहुत समझाया और पिताके मोहभावके अनेक उदाहरण दिए। इससे कुणिकको दया आगई, उसे अपने पितापर किए गए अत्याचारोंपर पश्चाताप हुआ। वह उन्हें छुटकारा देनेके लिए गया। राजा श्रेणिकने यह जानकर कि यह अब न जाने क्या अत्याचार करेगा, डरकर दीवालसे सिर दे मारा, जिससे उनकी उसी समय मृत्यु होगई। वे प्रथम नरकमें गए। वहांसे निकलकर वे भविष्यमें तीर्थंकर होंगे।

पाठ १६।

अभयकुमार।

(१) अभयकुमार राजा श्रेणिकके पुत्र थे। उनकी माताका नाम नंदश्री था। वे बड़ी चतुर और कलावान थीं।

(२) राजा श्रेणिक जिस समय कुमार अवस्थामें भ्रमण कर रहे थे, उस समय वे कांची नगरीमें पहुंचे थे। वहां वे श्रेष्ठी इन्द्रदत्तके साथ उनके घरपर ठहरे। उनकी पुत्री नंदश्रीकी चतुरता पर प्रसन्न होकर उन्होंने उसके साथ अपना विवाह किया था और बहुत समय तक वे वहां रहे थे। अभयकुमारका जन्म वहीं पर हुआ था। वे बड़े वीर और गुणवान थे।

(३) कुछ समय पश्चात् राजा श्रेणिक राजगृहके राजा हुए। वे न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे।

(४) बहुत समयसे अपने पिताको न देखकर एक दिन अभयकुमारने अपनी मातासे राजा श्रेणिकका हाल पूछा।

नंदश्रीने कहा—बेटा ! वे जाते समय कह गए थे कि राजगृहमें 'पाण्डुकुटि' नामका महल है, मैं वहीं रहता हूं। मैं जब समाचार दूं तब वहां आजाना। तबसे अभीतक उनका कोई पत्र नहीं आया। मालूम पड़ता है राज्यके कामोंसे उन्हें स्मरण न रहा। माता द्वारा पिताका पता पाकर अभयकुमार अकेले ही राजगृहको चल दिये और कुछ दिनोंमें वह नन्दिग्राम पहुंचे।

(५) जब श्रेणिकको उनके पिता उपश्रेणिकने देश बाहर जानेकी आज्ञा दी थी और श्रेणिक राजगृहसे निकल गए थे, तब उन्हें सबसे पहले रास्तेमें यही नंदिग्राम पड़ा था। यहांके लोगोंने राजद्रोहके भयसे श्रेणिकको गांवमें नहीं आने दिया था। इससे श्रेणिक उन लोगोंपर बहुत नाराज हुये थे। इस समय उन्हें उनकी इस अनुदारताकी सजा देनेके लिये श्रेणिकने उनके पास एक हुकमनामा भेजा कि आपके गांवमें एक मीठे पानीका कुआ है, उसे बहुत जल्दी मेरे पास भेजो, अन्यथा इस आज्ञाका पालन न होनेसे तुम्हें सजा दी जायगी। बेचारे गांवके ब्राह्मण इस आज्ञासे बहुत घबराये, सबके चेहरोंपर उदासी छागई। यह चर्चा हरएकके घर हो रही थी। इसी समय अभयकुमार वहां आए, उन्होंने गांवके सब लोगोंको इकट्ठा कर कहा—आप लोग चिंता न कीजिए मैं जैसा कहूं वैसा कीजिए, आपका राजा उससे खुश होगा। तब उन्होंने अभयकुमारकी सलाहसे राजा श्रेणिकको लिखा कि हमने कुएंसे आपके यहां चलनेकी बहुत प्रार्थना की परन्तु वह रूठ गया है। इसलिए आप अपने शहरकी उदुंबर नामकी कुईको लेने भेज दीजिए उसके

पीछे पीछे कुआ चला आयगा। श्रेणिक पत्र पढ़कर चुप होगए, उनसे उसका उत्तर न बन पड़ा।

(६) कुछ समय बाद श्रेणिकने उनके पास हाथी भेजा और लिखा कि 'इसको तोलकर ठीक वजन लिख भेजो'। वे फिर अभयकुमारके पास आए, उसके कहे अनुसार उनलोगोंने नावमें एक ओर तो हाथीको चढ़ा दिया और दूसरी ओर खूब पत्थर रखना शुरू किया, जब देखा कि दोनों ओरका वजन समतोल होगया तब उन्होंने उन पत्थरोंको अलग तौलकर श्रेणिकको हाथीका वजन लिख भेजा। श्रेणिकको अब भी चुप रह जाना पड़ा।

(७) तीसरीवार श्रेणिकने लिख भेजा कि "आपका कुआं गांवके पूर्वमें है, उसे पश्चिमकी ओर कर देना, मैं बहुत जल्दी उसे देखने आऊँगा।" इसके लिए अभयकुमारने उन्हें समझाकर गांवको पूर्वकी ओर बसा दिया जिससे कुआं पश्चिममें होगया।

(८) चौथीवार श्रेणिकने एक मेंढ़ा भेजा और लिखा कि "यह मेंढ़ा न दुर्बल हो, न मोटा हो और न इसके खाने पीनेमें असावधानी की जाय।" इसके लिये अभयकुमारने उन्हें यह युक्ति बतलाई कि मेंढ़ेको खूब खिलापिलाकर घण्टे दो घण्टेके लिए सिंहके साम्हने बांध दो इससे न वह बढ़ेगा और न घटेगा। इस तरह मेंढ़ा ज्योंका त्यों रहा।

(९) छठीवार श्रेणिकने उन्हें लिख भेजा कि 'मुझे बालू रेतकी रस्सी चाहिये सो तुम जल्दी बनाकर भेजो'। अभयकुमारने इसके उत्तरमें लिखवा भेजा कि 'महाराज ! जैसी रस्सी तैयार कर-

खाना चाहते हो उसका नमूना भेजिये, वैसी ही भेज दी जायगी।

(१०) इसप्रकार राजा श्रेणिकने जो कुछ मांगा उसका यथोचित उत्तर उन्हें मिल गया। वे ब्राह्मणोंको सजा देना चाहते थे पर नहीं देसके। उन्हें मालूम हुआ कि कोई विदेशी पुरुष नंद-गांवमें है, वही गांवके लोगोंको ये सब बातें सुझाया करता है। उनकी इच्छा उस पुरुषके देखनेकी हुई। उन्होंने एक पत्रमें लिखा कि आपके यहां जो विदेशी आकर रहा है उसे मेरे पास भेजिये परन्तु न तो वह रातमें आए और न दिनमें, न सीधे मार्गसे आए और न टेढ़े—मेढ़े मार्गसे'।

(११) अभयकुमारको पहले तो कुछ विचारमें पड़ना पड़ा परन्तु फिर उसे युक्ति सूझ गई। वह संध्याके समय गाड़ीके कोनेमें बैठ गया और गाड़ीको इस तरह चलवाया कि उसका एक पहिया सड़कपर और एक खेतपर चलता था।

(१२) जब वह दरबारमें पहुंचे तो देखा कि सिंहासनपर एक साधारण पुरुष बैठा है, उस पर श्रेणिक नहीं है। वह समझ गए कि इसमें कोई युक्ति की गई है। उन्होंने एकबार अपनी दृष्टि राजसभापर डाली, उसे मालूम हुआ कि राजसभामें बैठे हुए लोगोंकी नजर बारबार एक पुरुषपर पड़ रही है और वह अन्य लोगोंकी अपेक्षा सुन्दर और तेजस्वी है। पर वह राजाके अंगरक्षकोंमें बैठा है। अभयकुमारको उसी पर सन्देह हुआ, तब उनके कुछ चिन्होंको देखकर उन्हें विश्वास होगया कि यही राजा श्रेणिक है। उसने जाकर उन्हें प्रणाम किया। श्रेणिकने उठाकर उसे छातीसे लगा लिया।

कई वर्षों बाद पिता पुत्रका मिलाप हुआ, दोनोंको बड़ा आनंद हुआ। अभयकुमारने नंदिग्रामके सब ब्राह्मणोंका अपराध क्षमा करवा दिया।

(१३) सिंधुदेशकी विशालानगरीके राजा चेटककी सात कन्याएं थीं। इन सबमें चेलिनी और ज्येष्ठा बड़ी सुन्दरी थी। एक समय एक चित्रकारके द्वारा उनका चित्रपट देखकर राजा श्रेणिक इनपर मोहित होगए। उन्होंने राजा चेटकसे इन दोनों कन्याओंकी याचना की परन्तु उन्होंने राजा श्रेणिकके साथ अपनी कन्याओंका विवाह करनेसे इन्कार कर दिया।

यह बात अभयकुमारको मालूम हुई। वे राजा श्रेणिकका चित्र लेकर साहूकारके वेषमें विशाला पहुंचे। किसी उपायसे उन्होंने वह चित्रपट दोनों राजकुमारियोंको दिखलाया। वे उन्हें देखकर मुग्ध होगई, तब अभयकुमारने उन्हें सुरङ्गके द्वारा राजगृह चलनेको कहा। वे दोनों तैयार होगई। चेलिनी बहुत चालाक थी, उसे स्वयं तो जाना पसंद था पर वह ज्येष्ठाको न ले जाना चाहती थी। इसलिए थोड़ी दूर जानेपर उसने ज्येष्ठासे कहा कि मैं अपने गहने महलमें छोड़ आई हूं, तू जाकर उन्हें ले आ। वह आंखोंकी ओट हुई होगी कि चेलनी वहांसे रवाना होकर अभयकुमारके साथ राजगृह आगई। उसका श्रेणिकके साथ व्याह हुआ। वह उनकी प्रधान रानी हुई।

(१४) मगधदेशमें सुभद्रदत्त सेठ रहता था, उसकी दो स्त्रियां थीं। बड़ीका नाम वसुदत्ता और छोटीका नाम वसुमित्रा था। वसुमित्राके एक बालक था। दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था। कुछ

समय बाद ही सेठ सुभद्रदत्तका स्वर्गवास होगया। उनके स्वर्गवासके बाद ही दोनों स्त्रियोंमें कभी तो धनके लिये और कभी पुत्रके लिये लड़ाई होने लगी। वसुदत्ता कहती कि पुत्र मेरा और वसुमित्रा कहती कि मेरा। सेठ साहूकारोंने आपसमें उनका निबटारा करना चाहा, परन्तु दोनोंमेंसे कोई भी उसे माननेको मंजूर न थीं। अंतमें वे दोनों महाराजाके दरबारमें आईं और अपना हाल सुनाया।

स्त्रियोंकी विचित्र बात सुनकर महाराजा श्रेणिक चकित हो गये। वे यह न जान सके कि पुत्र किसका है। उन्होंने स्त्रियोंको बहुत समझाया, किंतु उन्होंने एक न मानी तब महाराजाने कुमार अभयको बुलाया और उनके साम्हने स्त्रियोंका हाल सुनाया। कुमारने दोनों स्त्रियोंको बुलाकर समझाया परन्तु वे दोनों पुत्रको अपना २ बतलाती रहीं। तब अन्तमें कुमारने बालकको जमीनपर रखवा दिया। अपने हाथमें तलवार ले उसे बालकके पेटपर रखकर स्त्रियोंसे कहा आप घबहाएं न, मैं अभी इस बालकके दो टुकड़े किए देता हूं। आप एक एक टुकड़ा ले लें। यह सुनकर वसुमित्राको अपने बालक पर बड़ी दया आई।

वह बोली—कुमार! आप बालकके टुकड़े न करें, वसुदत्ताको दे दें, यह बालक वसुदत्ताका ही है। यह सुनकर कुमारने जान लिया कि बालक वसुमित्राका ही है और उसे बालक देकर वसुदत्ताको राज्यसे निकलवा दिया।

(१५) इसी समय अयोध्यामें बलभद्र नामक गृहस्थ रहता था, उसकी स्त्री बड़ी सुन्दरी थी। उसका नाम भद्रा था। वह

एक दिन अपने घरके छतपर खड़ी थी। उसे उसी नगरके वसंत नामक एक धनवान क्षत्रियने देखा। वह भद्राकी सुन्दरतापर हृदयसे मोहित होगया। एक समय उसने एक चतुर दूतीको भद्राके पास भेजा। दूतीने वसंतके धन वैभव और रूपकी खूब प्रशंसा की। भोली भद्रा उसकी बातोंमें आगई और वह वसंतके धन वैभवपर मोहित होगई। वह दूतीके साथ वसंतके घर जानेको राजी होगई और उसके साथ भोगविलास भी होने लगा।

भद्राका पति बलभद्र किसान था। एक दिन भद्राको खेतपर जाना पड़ा। दैवयोगसे भद्राकी भेंट गुणसागर मुनिसे होगई। मुनि गुणसागरको अतिशय रूपवान तेजस्वी और युवा देखकर वह मोहित होगई। उसने उनसे भोगकी प्रार्थना की। उन्होंने भद्राको ब्रह्मचर्य और शील धर्मका उपदेश दिया। मुनिका उपदेश सुनकर भद्राके हृदयमें शीलव्रत जागृत होउठा, उसने मुनिराजके सामने शील-व्रतकी प्रतिज्ञा ली और जैन धर्मको ग्रहण किया। भद्राने अब वसंतके यहां जाना छोड़ दिया और दूतीके द्वारा कहला भेजा कि मैं अब तेरा मुंह भी न देखूंगी। पापी वसंत जब उसे किसी तरह वशमें नहीं कर सका तब उसने किसी मंत्रके द्वारा अपने वशमें करना चाहा। इसी समय महाभीम नामका मंत्रवादी अयोध्यामें आया, उसने उससे बहुरूपिणी विद्या सीखी। एक दिन वह अचानक ही मुर्गेका रूप धारणकर बलभद्रके घरके पास चिल्लाने लगा। मुर्गेकी आवाजसे यह समझ कर कि सवेरा होगया है, बलभद्र अपने पशुओंको लेकर खेतकी ओर रवाना होगया और

पापी वसंत शीघ्र ही बलभद्रका रूप रखकर घरमें घुस गया। सुशी-ला भद्राकी दृष्टि नकली बलभद्र पर पड़ी। चाल ढालसे उसे चट मालूम होगया कि यह मेरा पति बलभद्र नहीं है। वह उसे गालियां देकर घरसे बाहिर निकालने लगी। इसी समय कार्यवशात् बलभद्र भी वहां आया और अपने समान दूसरा बलभद्र देख आपसमें झगड़ा करने लगा। दोनोंकी चाल, ढाल, रूप देखकर पड़ोसियोंके होश उड़ गए। अनेक उपाय करने पर भी उनको पता न लग सका कि असली बलभद्र कौन है। अंतमें वे दोनों बलभद्रोंको लेकर राजगृह अभयकुमारके निकट गए। उन्होंने दोनों बलभद्रोंको बुला कर एक कोठेमें बंद कर भद्राको सभामें बुलाकर एक तुम्बी अपने साम्हने रखकर दोनों बलभद्रोंसे कहा कि तुम दोनोंमेंसे जो कोई कोठेके छिद्रसे न निकलकर इस तुंबीके छिद्रसे निकलेगा, वह असली बलभद्र समझा जायगा, उसे ही भद्रा मिलेगी। यह सुन कर नकली बलभद्र चट तुंबीके छिद्रसे निकल भद्राका हाथ पकड़ने लगा तब कुमार अभयने कहा—कि यही नकली बलभद्र है और उसे मार-पीटकर नगरसे बाहिर भगा दिया और असली बलभद्रको कोठेसे बाहर निकाल भद्रा देकर अयोध्या जानेकी आज्ञा दी। इस प्रकार पक्षपात रहित नीतिसे कुमार अभयकी कीर्ति चारों ओर फैल गई।

(१६) एक समय महाराज श्रेणिककी अंगूठी कुएँमें गिर गई, उन्होंने शीघ्र ही कुमार अभयको बुलाया और कहा कि अंगूठी सूखे कुएँमें गिर गई है। बिना किसी बांस आदिकी सहायताके इसे निकाल दो। आज्ञा पाकर कुमारने कहींसे गोबर मंगाकर कुएँमें

डलवा दिया। गोबरके सूख जानेपर उसमें मुंहतक पानी भरवा दिया। ज्यों ही बहता २ गोबर कुएँके मुंहतक आया, गोबरमें लिपटी अंगूठी भी कुएँके मुंहपर आगई। उस अंगूठीको लेकर कुमारने महाराजको दे दी।

(१७) कुमारका अद्भुत चातुर्य देखकर महाराज श्रेणिक उनका सम्मान करने लगे और प्रजाके लोग उनकी चतुरताकी प्रशंसा करने लगे। अनेक गुणोंसे भूषित कुमार युवराजके पदपर सुशोभित हो सबको आनंद देते थे।

(१८) एक समय राजसभामें तत्वोंकी चर्चा करते करते राजकुमार अभयको अपने पूर्व भवोंका स्मरण होआया। जिससे उनका हृदय संसारसे विरक्त होगया। उन्होंने पितासे आज्ञा मांगकर भगवान महावीरके समवशरणमें जाकर मुनिधर्मकी दीक्षा ग्रहण की और चिरकाल तक घोर तप कर घातिया कर्मोंको नाशकर केवलज्ञान प्राप्त किया। बहुत समय विहार कर उन्होंने मोक्ष सुख पाया।

पाठ १७।

तपस्वी वारिषेण।

(१) वारिषेण राजगृह नगरके राजा श्रेणिक और रानी चेलिनीके छोटे पुत्र थे। आप बाल्यावस्थासे ही बड़े धार्मिक तथा कर्तव्यशील थे।

(२) वे प्रत्येक चतुर्दशीको उपवास करते थे और रात्रिको श्मशानमें कायोत्सर्ग करते थे।

(३) एक दिन मगध सुन्दरी नामकी वेश्या राजगृहके उपवनमें क्रीड़ा करने गई थी। वहां श्री कीर्तिसेठके गलेमें पड़े हुए रत्नोंके हारको देखकर वह मोहित होगई। उसने अपने प्रेमी विद्युत्प्रभ चोरसे उस हारके लानेको कहा। वह उसे संतोष देकर उसी समय वहांसे चल दिया और श्री कीर्तिसेठके महलमें पहुंचकर सोते हुए सेठके गलेसे हार निकालकर शीघ्रतासे वहांसे चल दिया, परन्तु वह हारके दिव्य तेजको नहीं छुपा सका। उसे भागते हुए सिपाहियोंने देख लिया, वे उसे पकड़नेको दौड़े। वह भागता हुआ श्मशानकी ओर निकल आया।

(५) वारिषेण इस समय श्मशानमें कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। विद्युत चोरने मौका देखकर पीछे आनेवाले सिपाहियोंके पंजेसे छूटनेके लिए उस हारको वारिषेणके आगे पटक दिया और वहांसे भाग गया। इतनेमें सिपाही भी वहां आ पहुचे जहां वारिषेण ध्यानमें मग्न खडे थे, वे वारिषेणको हारके पास खड़ा देखक भौंचकसे रह गए। फिर बोले—वाह! चाल तो खूब खेली गई? मानों मैं कुछ जानता ही नहीं। मुझे धर्मात्मा जानकर सिपाही छोड़ जांयगे, पर हम तुम्हें कभी नहीं छोड़ेंगे। यह कहकर वे वारिषेणको बांधकर श्रेणिकके पास लेगए और राजासे बोले—महाराज! ये हार चुरा कर लिए जाते थे सो मैंने इन्हें पकड़ लिया।

(५) सुनते ही राजा श्रेणिकका चेहरा लाल होगया, उनके ओठ कांपने लगे, उन्होंने गर्जकर कहा—यह पापी! श्मशानमें जाकर

ध्यान करता है और लोगोंको धर्मात्मा बतलाकर धोखा देता है। जाओ इसे इसी समय ले जाकर शूलीपर चढ़ा दो।

(६) जल्लाद लोग उसी समय वारिषेणको वध्यभूमिमें ले गए। उनमेंसे एकने तलवार खींचकर बड़े जोरसे वारिषेणकी गर्दन पर मारी। परन्तु उनकी गर्दनपर बिल्कुल घाव नहीं हुआ। चांडाल लोग देखकर दांत अंगुली दबा गए।

(७) वारिषेणकी यह हालत देखकर सब उसकी जय जय-कार करने लगे। देवोंने प्रसन्न होकर उन पर सुगंधित फूलोंकी वर्षा की।

(८) श्रेणिकने इस अलौकिक घटनाको सुना, वे बहुत पश्चा-त्ताप करके पुत्रके पास श्मशानमें आए। वारिषेणकी पुण्य मूर्तिको देखते ही उनका हृदय पुत्रप्रेमसे भर आया। उन्होंने अपने अपरा-धकी क्षमा मांगी। वारिषेणका पुण्यप्रभाव देखकर विद्युत् चोरको बड़ा भय हुआ। उसने अपना अपराध स्वीकार करके दयाकी भिक्षा मांगी। राजाने उसे क्षमा करदिया।

(९) इस घटनासे वारिषेणको वैराग्य होगया। उन्होंने माता पितासे आज्ञा लेकर दीक्षा धारण की।

(१०) वारिषेण मुनि जहांतहां घूमकर धर्मोपदेश देते हुए पलाशकूट नगरमें पहुंचे। वहां राजा श्रेणिकका मंत्रीपुत्र पुष्पडाल रहता था। वह सम्यग्दृष्टि और दानपूजामें तत्पर था।

(११) वारिषेण मुनि जब पुष्पडाल दरवाजेसे निकले तो उसने उन्हें पडगाहा और भक्ति सहित आहार दिया। जब मुनिमहाराज

आहार लेचुके और वनको चले तब पुष्पडालने सोचा कि जब गृहस्थीमें थे तब मेरे बड़े मित्र थे। इसलिए पुरानी मित्रताके नाते इन्हें कुछ दूर पहुंचा आना चाहिए। पुष्पडालके घरमें एक कानी स्त्री थी, उससे आज्ञा लेकर वह मुनिराजके पीछे पीछे चला। बहुत दूरतक जानेके बाद पुष्पडाल मुनिके सामने खड़ा होगया और नमस्कार किया। मुनिराजने उसे धर्मवृद्धि देकर धर्मका स्वरूप सुनाया।

(१२) ज्ञान वैराग्यका उपदेश सुनकर पुष्पडालका मन संसारसे उदास होगया और उसने वारिषेण मुनिके पास दीक्षा ले ली। वह बहुत दिनों तक शास्त्रोंका अभ्यास करते रहे और संयम पालते रहे, परन्तु उनका मन उस कानी स्त्रीकी ओर कभी कभी आकर्षित होजाता था।

(१३) एक दिन पुष्पडालको अपनी स्त्रीकी गहरी खबर हो आई, वह मनमें सोचने लगा-बेचारी मेरी स्त्री मेरे बिछोहमें पागल होरही होगी, इसलिए घर जाकर कुछ दिन उसे गृहस्थीका सुख देकर पीछे दीक्षा लूँगा। यह सोचकर वह घरकी ओर चलने लगा।

(१४) वारिषेण मुनि उसके मनकी बात जान गए और उसे धर्ममें स्थिर करनेके लिए उसे अपने साथ राजगृह लेगए।

(१५) वारिषेणने घर पहुंचकर अपनी मातासे कहा, हे माता! मेरी स्त्रियोंको गहनोंसे सजाकर मेरे पास लाओ। रानी चेलना उनकी सभी स्त्रियोंको ले आई और वे सब मुनिको नमस्कार कर खड़ी होगईं। तब वारिषेणने पुष्पडालसे कहा-देखो! ये मेरी स्त्रियां

हैं और यह राज्य सम्पत्ति है, यदि तुम्हें ये अच्छी जान पड़ती हैं तो तुम इन्हें स्वीकार करो ।

(१६) वारिषेण मुनिका यह कर्तव्य देखकर पुष्पडाल बहुत लज्जित हुआ । वह नमस्कार कर बोला—प्रभो ! आप धन्य हैं, आपने मेरे मोहको हटा दिया, अब मुझे सच्चा वैराग्य होगया, आप मुझे क्षमा कीजिए और प्रायश्चित्त देकर सच्चे मार्गमें लगाइए । वारिषेण मुनिने प्रसन्न होकर उसे प्रायश्चित्त देकर फिरसे दीक्षा दी ।

(१७) वारिषेण मुनिने पुष्पडालके साथ २ घोर तपस्या की और अन्तमें केवलज्ञान प्राप्तकर सिद्ध पद पाया ।

पाठ १८ ।

सती चन्दना ।

(१) चन्दनाकुमारी वैशालीके राजा चेटककी पुत्री थी । वह बड़ी धर्मात्मा और पवित्र थी ।

(२) एक दिन वह अपने बगीचेमें झूला झूल रही थी, इसी समय एक विद्याधर वहांसे निकला, वह चंदनाको देखकर मोहित होगया और विमानमें बिठाकर लेगया । बेचारी चन्दना रोती हुई विमानमें बैठी जारही थी कि इसी समय उस विद्याधरकी पत्नी वहां आपहुंची तब विद्याधरने अपनी पत्नीके भयसे उसे जंगलमें ही छोड़ दिया ।

(३) जंगलमें फिरती हुई चन्दनाको भीलोंके सरदारने देखा, वह उसे अपने घर लेगया । परन्तु चन्दनाकी सुन्दरता देखकर

उसके मनमें लोभ आ गया, उसने कुछ रुपये लेकर चन्दनाको एक व्यापारीके हाथ बेच दिया।

(४) व्यापारीने उसे लेजाकर कौशांबीके बाजारमें बेचनेको खड़ा कर दिया। कौशांबीके सेठ वृषभसेन उसको मुंह मांगा दाम देकर चन्दनाको अपने घर ले गए और उसे अपनी पुत्रीकी तरह प्यार करने लगे।

(५) वृषभसेनकी सेठानी चन्दनाके ऊपर सेठजीका इस तरह प्यार देखकर उससे डाह करने लगी, उसे चन्दनापर अनेक तरहकी शंकाएं होने लगीं। अन्तमें उसने एक दिन चन्दनाके हाथ पांवमें बेड़ियां डालकर एक तहखानेमें बन्द कर दिया।

(६) सेठजीने उसका कई दिनतक पता लगाया पर वे उसकी खोज न कर सके। एक समय पता लगाते हुए वे बन्दीगृह पहुंचे, वहां उन्होंने भूख प्याससे तड़पती हुई चंदनाको देखा, उन्होंने उसे बंदीगृहसे बाहर निकाला और उसकी हाथकड़ी बेड़ियां खोलने लगे। उनसे एक बेड़ीका बन्द नहीं टूटा। वे उसे खोलनेके लिए लुहारको बुलाने गए।

(७) इसीसमय भगवान महावीर आहारके लिए आये थे, वे आकर चंदनाके साम्हने खड़े होगए। चंदना एकदम खड़ी हो गई। साम्हने सूपमें कुछ चावल रक्खे थे, उन्हींको लेकर उसने भगवानको पड़गाहा। भगवानने वहीं आहार ग्रहण किया। उनका आहार सानंद होचुकनेके कारण देवोंने पञ्चाश्चर्य किये। इससे सारे नगरमें चंदनाके दानकी चर्चा होगई।

(८) कौशांबीकी रानीने भी यह समाचार सुने, उन्होंने चंदनाको अपने यहां बुलाया। कौशांबीकी रानी मृगावती चंदनाकी बहिन थी, वह चंदनाको देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई।

(९) रानी मृगावतीने चन्दनाको प्रेम सहित अपने यहां रक्खा परन्तु उसका हृदय संसारसे अत्यन्त उदास होगया था इस-लिए थोड़े समय पश्चात् ही भगवान महावीरके समवशरणमें जाकर उसने आर्यिकाकी दीक्षा ग्रहण की।

(१०) भगवान महावीरके समवशरणमें चन्दना आर्यिका संघकी नायिका हुई, उन्होंने अनेक स्थानोंमें भ्रमण कर नारियोंको धर्मका उपदेश दिया। अन्तमें शरीर त्यागकर स्वर्ग प्राप्त किया।

पाठ १९।

क्षत्रिय-रत्न जीवंधर।

(१) राजपुरी नगरीके राजा सत्यंधर थे, उनकी रानीका नाम विजया था। वे अपनी रानीके प्रेममें अत्यंत आसक्त रहते थे और उनने अपने राज्यका कार्य काष्टांगार नामक राज-कर्मचारीके सुपुर्द कर दिया था।

(२) कुछ दिनोंमें विजया रानीके गर्भ रहा, उस समय रानीको एक स्वप्न हुआ। जिसके फलका विचार करनेपर राजाको निश्चय हुआ कि मैं मारा जाऊंगा, इससे अपने वंशकी रक्षाके विचारसे एक मयूरके आकारका यंत्र बनाया जो कलके घुमानेसे

आकाशमें उड़ता था उसमें बैठाकर रानी विजयाको वह आकाशमें उड़ानेका अभ्यास कराने लगे।

(३) काष्टांगारको रानीकी आधीनतामें रहना बुरा लगने लगा। इसलिये उसने सत्यंधरको मारकर स्वयं राजा बन जानेका विचार किया। उसने एक सैना राजाके मारनेको भेजी। राजाने रानीको मयूर यंत्रमें बिठाकर उड़ा दिया और आप सैनासे लड़ते २ मृत्युको प्राप्त हुआ।

(४) मयूरयंत्र बाहर श्मशानमें गिरा, वहां राजपुरीका प्रसिद्ध सेठ अपने मृतक पुत्रको जलाने आया था। विजयारानीने वहीं पुत्र प्रसव किया और छोड़ दिया। सेठने पुत्रको देखा और घर लेजाकर अपनी स्त्रीको देदिया। सेठानीने बालकका जीवंधर नाम रक्खा और पुत्रके समान पालन किया। रानी विजया दण्डकारण्यमें तपस्वियोंके आश्रममें चली गई।

(५) सेठके यहां रहकर जीवंधर युवावस्थाको प्राप्त हुआ। उन्होंने आर्यनन्दी आचार्यके निकट सभी विद्याओंको प्राप्त किया। उनका शरीर बड़ा सुदृढ़ था, वे बड़े वीर और पराक्रमी थे।

(६) एक समय नंद गोपकी सभी गायोंको भील लेगए। नंद गोपने घोषणा की कि मेरी गाएं जो वापिस लौटा देगा उसे अपनी कन्या दूंगा। जीवंधरने भीलोंसे युद्ध करके नंद गोपकी सभी गायोंको वापिस लाकर उसे संतुष्ट किया।

(७) उन्होंने गांधार देशकी राज्यकन्या गंधर्वदत्ताको वीणा बजानेमें जीतकर उससे अपना विवाह किया।

(८) एक समय जीवंधर कुमारने मार्गमें ब्राह्मणोंके द्वारा मारते हुए एक कुत्तेको देखा। उन्होंने उसे बड़ी दयाके साथ णमोकार मंत्र सुनाया। जिससे वह मरकर सुदर्शन नामक यक्ष हुआ।

(९) राजपुरीमें सुरमंजरी और गुणमाला नामक दो कन्याएं थीं। गुणमाला नदीसे स्नान कर घर आरही थी। उसी समय राजाका उन्मत्त हाथी छूट गया। वह कन्यापर झपटना ही चाहता था कि कुमारने आकर उसे मुक्कोंसे मारकर मद रहित कर दिया। गुणमाला कुमारको देखकर मोहित होगई। माता पिताने कुमारके साथ उसका तथा सुरसुंदरीका विवाह कर दिया।

(१०) गुणमालाको बचाते समय कुमारने काष्टांगारके हाथीको कड़ी चोट पहुंचाई थी। इसलिए उसने क्रोधित होकर कुमारको राजसभामें बुलाकर मार डालनेका हुक्म दिया। लोग उन्हें मारनेके लिए जा रहे थे कि मार्गमें सुदर्शन यक्षने उन्हें उठाकर चन्द्रोदय पर्वतपर पहुंचा दिया। वहांपर पहुंचकर कुमारने एक स्थानपर दावानलसे जलते हुए हाथियोंको बचाया और अनेक तीर्थोंकी यात्रा की।

(११) चंद्रमा नगरीके राजा धनपतिकी पुत्री पद्माको सांपने काट खाया था। कुमारने मंत्र बलसे सर्प विषको दूर करके उसे जीवनदान दिया, इससे प्रसन्न होकर राजाने कन्याका उनसे विवाह कर दिया और अपना आधा राज्य कुमारको दे दिया।

(१२) वहांसे चलकर वह हेमाभा नगर पहुंचे। वहांके राजपुत्रोंको कुमारने धनुषविद्यायें सिखलाईं, जिससे राजाने प्रसन्न होकर अपनी कन्या कनकमाला उन्हें विवाह दी। वहांपर इनकी गंधोत्कट सेठके

पुत्र नन्दाढ्य और पद्माख्यसे भेंट हुई। उनके कहनेसे अपनी माताक्षे मिलने गए और उनसे मिलकर राजपुरी पहुंचे। सेठ गंधोत्कटसे सलाह लेकर वे अपने मामा गोविंदराजके यहां धरणीतिलक नगर गए और उनसे परामर्श करके उनके साथ काष्टांगारका निमंत्रण प्राप्त होनेपर सैना सहित राजपुरी गए।

(१३) राजपुरीमें गोविन्दराजने अपनी पुत्री लक्ष्मणाका स्वयंवर रचा और यह विदित किया कि जो चन्द्रक यंत्रके तीन वराहोंको छेदेगा उसे मैं अपनी कन्या दूंगा। सभी राजाओंने यंत्रको छेदनेका प्रयत्न किया परन्तु कोई भी सफल नहीं हुए तब जीवंधरकुमारने बातकी बातमें धनुष चढ़ाकर उन वराहोंको छेद डाला। गोविंदराजने अपनी पुत्री देकर सब राजाओंके सामने प्रकट किया कि यह सत्यंधर महाराजके पुत्र जीवंधर कुमार हैं।

(१४) जीवंधरकुमारका परिचय प्राप्तकर काष्टांगार बहुत घबराया, वह जीवंधरकुमारसे युद्ध करनेको तैयार होगया। दोनोंमें भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें जीवंधरकुमारके हाथसे दुष्ट काष्टांगार मारा गया।

(१५) गोविंदराजने बड़े समारोहके साथ जीवंधरका राज्य अभिषेक किया और जीवंधर महाराज अपनी सभी रानियोंके साथ सुखपूर्वक राज्य करने लगे।

(१६) एक दिन जीवंधरस्वामी अपनी आठों रानियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे कि उन्हें अचानक वैराग्य हो आया। वे अपने पुत्र सत्यंधरको राज्य देकर भगवान् महावीरके समवशरणमें

पहुंचे। वहां दिगंबरी दीक्षा लेकर वे महातप करने लगे और अंतमें उन्होंने केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष लाभ किया।

पाठ २०।

अंतिम केवली–जंबूकुमार।

(१) वीर निर्वाणसे २२ वर्ष पूर्व राजगृहीके प्रसिद्ध सेठ अर्हद्दत्तकी पत्नी जिनमतीके आपका जन्म हुआ था।

(२) ५ वर्षकी आयुमे ही आपका विद्याध्ययन हुआ था। आप शास्त्रज्ञान और शस्त्रकलामें बड़े निपुण और वीर थे।

(३) जब आपकी उम्र १३ वर्षकी थी उस समय एक दिन मगधनरेश श्रेणिकका यह बंध हाथी अचानक बिगड़कर नगरमें भारी उपद्रव करने लगा और राजाके बड़े २ सामन्तोंके वशमें न आया तब इन्होंने अपने साहस और पराक्रमसे उसे अपने वश कर लिया। इससे राजदरबारमें आपका बड़ा सम्मान हुआ।

(४) कुछ समय पश्चात् राजगृहके प्रसिद्ध चार सेठोंकी कन्याओंसे आपकी सगाई (पक्की) होगई।

(५) केरलपुरके राजा मृगाङ्कने अपनी कन्या विलासवती राजा श्रेणिकको देना स्वीकार की थी। परन्तु राजा मृगाङ्कका प्रबल राजा रत्नचूल उस कन्याको लेना चाहता था। उसने राजा मृगाङ्कपर चढ़ाई कर दी थी, तब राजा मृगाङ्कने अपनी सहायताके लिए राजा श्रेणिकके यहां दूत भेजा। जम्बूकुमार राजा श्रेणिककी

ओरसे कुछ सेना ले जाकर केरकपुर पहुंचे और रत्नचूल विद्याधरसे बड़ी वीरताके साथ लड़कर उसे बांधकर राजा मृगाङ्कका मित्र बना दिया और वह विलासवतीको लेकर राजगृही लौट आए। इससे राजा श्रेणिक उनपर बड़े प्रसन्न हुए और उनका बड़ा सम्मान किया।

(६) एक समय स्वामी सुधर्माचार्यजीका उपदेश होरहा था। जम्बूकुमार भी उनका उपदेश सुनने गए। उनका उपदेश वैराग्यसे भरा हुआ था। उपदेश सुनकर उन्हें विषयभोगोंसे घृणा होगई और वे उसी समय मुनि दीक्षा लेनेको तैयार होगए परन्तु आचार्य महाराजने माता पिताकी आज्ञाके विना दीक्षा नहीं दी।

(७) ये माता पिताके आज्ञा लेने आए। माता पिताने इन्हें बहुत समझाया परन्तु ये तनिक भी नहीं माने तब अन्तमें माता पिताने कहा कि तुम विवाह करलो और विवाहके बाद संतान होने-पर दीक्षा लेलेना। उस समय हम भी तुम्हारे साथ दीक्षा लेलेंगे, परन्तु कुमारने इसे भी स्वीकार नहीं किया।

(८) जंबूकुमारके वैराग्यकी बात चारों कन्याओंको मालूम हुई, उन्होंने प्रण किया कि जम्बूकुमारके सिवाय हम किसीसे विवाह न करेंगी, तब उन्होंने इस शर्तपर विवाह कराना स्वीकार किया कि विवाह करनेके बाद ही वे दीक्षा धारण कर लेंगे।

(९) एक रात्रिमें ही चारों कन्याओंके साथ कुमारका विवाह होगया। तब चारों कन्याओंने उन्हें अपनी वचन चातुर्यता द्वारा

संसारमें फंसानेका उद्योग किया। उन्होंने अनेक उदाहरण देकर समझाया कि वर्तमान सुखको छोड़कर तपस्या करके आगामीक सुखोंको चाहना उचित नहीं। जंबूकुमारने उन सबको उत्तर देकर उन्हें हरा दिया।

(१०) माता—पिताने भी इन्हें बहुत समझाया, परन्तु उन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। इसी समय विद्युत् नामक प्रसिद्ध राजपुत्र चोर इनके यहां चोरीको आया था। उससे माताने पुत्रके वैराग्यकी बात कह सुनाई, तब विद्युत्चोरने कुमारका मामा बनकर उन्हें बहुत समझाया परन्तु कुमारने अपने दीक्षालेनेके विचारको नहीं बदला। अन्तमें माता-पिताकी आज्ञानुसार विद्युत्चोर तथा उनके ५०० साथियों और अनेक प्रतिष्ठित पुरुषोंके साथ २. श्री सुधर्माचार्यके निकट जिन दीक्षा ग्रहण की। माता और चारों स्त्रियोंने भी दीक्षा ली।

(११) ९ वर्षके उग्र तप करने पर वीर निर्वाण संवत १२में जम्बूस्वामी मुनि श्रुतकेवली हुए।

(१२) श्रुतकेवली होनेके १२ वर्ष बाद वीर निर्वाण संवत २३ जेठ शुक्ला ७ को उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हुआ।

(१३) उन्होंने ४० वर्ष तक धर्मोपदेश दिया और वीर संवत् ६२ में मथुरापुरीके चौरासी नामक स्थानसे मोक्षपद प्राप्त किया।

पाठ २१।

विद्युत्प्रभ चोर।

(१) पोदनपुरके राजा विद्युत्राज रानी विमलमतीके यहां विद्युत्प्रभका जन्म हुआ था। विद्युत्प्रभ बाल्यावस्थासे ही साहसी और पराक्रमी था।

(२) बाल्यावस्थासे ही कुसंगतिमें पड़ जानेके कारण उसे चोरीकी आदत पड़ गई थी और बढ़ते२ वह अपने बहुतसे साथियोंके साथ बड़ी २ चोरियां करने लगा।

(३) पिताने उसे बहुत समझाया, डांटा और राज्य देनेका प्रलोभन दिया, परन्तु उसने एक भी बात न सुनी। उसने साफ उत्तर देदिया कि यदि आप मुझे सारा राज्यपाट और धन संपत्ति भी दे दे तो भी मैं चोरी करना नहीं छोडूंगा।

(४) वह अपने ५०० साथियोंके साथ राजगृही नगरीमें जाकर कमला वेश्याके घर ठहरा और नगरके आसपास चोरियां करता रहा।

(५) जिस रात्रिको जम्बूकुमारका विवाह हुआ था और उनकी स्त्रियां तथा मातापिता उन्हें मुनिदीक्षा ग्रहण करनेसे रोकनेका प्रयत्न कर रहे थे, उसी रात्रिको विद्युत्प्रभ भी चोरी करनेके विचारसे उनके महलमें पहुंचा।

(६) जम्बूकुमारकी माता उस समय शोकसे दुःखी होरही थी, उसने विद्युत्प्रभसे कहा कि यह सारी धन दौलत तु ले जा

मुझे इसकी क्या आवश्यक्ता है। मेरा इकलौता बेटा जम्बूकुमार दीक्षा लेकर वनको जा रहा है फिर मैं इस संपत्तिका क्या करूँगी?

(७) जम्बूकुमारकी माताको शोक-संतप्त देखकर और अपनी अटूट धन संपत्तिसे विरक्त जम्बूकुमारके साधु होनेके समाचार सुनकर वह अपना कार्य भूल गया। उसने माताके सन्मुख प्रण किया कि मैं कुमारको समझाकर रोकूंगा और यदि उन्हें नहीं रोक सकूंगा तो मैं भी साधु बन जाऊंगा।

(८) विद्युतप्रभने कुमारको मुनि दीक्षाके रोकनेका भरसक प्रयत्न किया, पर वह सफल न हुआ तब उसने अपने ५०० मित्रोंके साथ २ दीक्षा ग्रहण की और अनेक उपसर्गोंको सहन करते हुये घोर तपश्चरण किया। अंतमें अपनी आयु समाप्तकर तपके प्रभावसे वह अहमिन्द्र पदको प्राप्त हुए।

पाठ २२।

श्री भद्रबाहु-अंतिम श्रुतकेवली।

(१) पुंड्रवर्धन देशके कोटीपुर नगरके सोमशर्मा नामक पुरोहितके यहां आपका जन्म वीर निर्वाण सं० १६२ में हुआ था। आपकी माताका नाम श्रीदेवी था।

(२) जब भद्रबाहु आठ वर्षके थे तब एक दिन वे अपने साथियोंके साथ गोलियां खेल रहे थे। सब बालक अपनी होशियारीसे गोलियोंको एक पर एक रख रहे थे। किसीने दो, किसीने चार, किसीने छह और किसीने आठ गोलियां ऊपर तले चढ़ा दीं

पर भद्रबाहुने एक साथ चौदह गोलियां तले ऊपर चढ़ादीं। सब बालक देखकर दंग रह गए।

(३) चौथे श्रुतकेवली श्री गोवर्द्धनाचार्य उसी समय गिरनारकी यात्राको जाते हुए वहांसे निकले। उन्होंने भद्रबाहुके खेलकी चतुरताको देखकर निमित्त ज्ञानसे जान लिया कि पांचवें श्रुतकेवली यही होंगे, वे भद्रबाहुको साथ लेकर उनके घर गए और सोमशर्मासे उन्होंने भद्रबाहुको पढ़ानेके लिए मांगा। आचार्यने भद्रबाहुको खूब पढ़ाया। वे बहुत शीघ्र सब विषयोंके पूर्ण विद्वान् होगए तब उन्होंने उसे वापिस घर लौटा दिया।

(४) भद्रबाहु घर गए परन्तु उनका मन घरमें नहीं लगता था। उन्होंने माता पितासे अपने साधु होनेकी प्रार्थना की। माता पिताको इससे बड़ा दुःख हुआ। भद्रबाहुने उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया और सब मोह माया छोड़कर गोवर्द्धनाचार्यसे दीक्षा लेकर वे योगी होगए।

(५) गुरु गोवर्द्धनाचार्यकी कृपासे भद्रबाहु चौदह महा-पूर्वके विद्वान् होगए। जब संघाधीश गोवर्द्धनाचार्यका स्वर्गवास होगया तब उनके बाद उनके पदपर भद्रबाहु श्रुतकेवली बैठे।

(६) आचार्य भद्रबाहु अपने संघको साथ लेकर अनेक देशों और नगरोंमें अपने उपदेशका पान कराते उज्जैनकी ओर आये और सारे संघको एक पवित्र स्थानमें ठहराकर आप आहारके लिये शहरमें गये।

(७) जिस घरमें इन्होंने पहले ही पांव दिया, वहां एक

बालक पालनेमें झूल रहा था। वह अभी बोलना नहीं जानता था, इन्हें घरमें पांव देते देख वह सहसा बोल उठा। आइये! महाराज, आइये!! एक अबोध बालकको बोलता देख आचार्य बड़े चकित हुए। उन्होंने निमित्त ज्ञानसे विचार किया तो उन्हें जान पड़ा कि यहां बारह वर्षका भयानक दुर्भिक्ष पड़ेगा और धर्म कर्मकी रक्षा करना तो दूर रहा, मनुष्योंको अपनी जान बचाना कठिन होगा।

(८) भद्रबाहु आचार्य उसी समय अन्तराय कर लौट आए। इसी दिन कार्तिक शुक्ला पूर्णिमाके दिन महाराजा चन्द्रगुप्तने १६ स्वप्न देखे। उनमें अन्तिम स्वप्न एक १२ फणका सर्प देखा तब महाराजने श्री भद्रबाहुस्वामीसे उन स्वप्नोंका फल पूछा तो स्वामीने अन्तिम स्वप्नका फल उत्तर भारतमें बारह वर्षका घोर दुर्भिक्ष बताया।

(९) भद्रबाहुस्वामीने संध्याके समय अपने सारे संघको इकट्ठा कर उनसे कहा कि यहां बारह वर्षका बड़ा भारी अकाल पड़नेवाला है। तब धर्म कर्मका निर्वाह होना कठिन ही नहीं असंभव होजायगा। इसलिये आप लोग दक्षिण दिशाकी ओर जावें। मेरी आयु थोड़ी रह गई है। इसलिए मैं यहीं रहूंगा। यह कहकर उन्होंने दश पूर्वके जाननेवाले अपने प्रधान शिष्य श्री विशाखाचार्यको चारित्रकी रक्षाके लिए बारह हजार मुनियों सहित दक्षिण चोलपाण्डकी ओर रवाना कर दिया।

(१०) रामल्य, स्थूलाचार्य और स्थूलभद्र आदि मुनि श्राव-कोंके आग्रहसे उज्जयिनी ही रह गए। कुछ समयमें घोर दुर्भिक्ष

पड़ा और वे सब शिथिलाचारी होगए। दुर्भिक्षकी परिस्थितिके कारण सबने दंड, तूंबा, पात्र और अर्द्ध सफेद वस्त्र धारण किया।

(११) सारे संघको चला गया देख उज्जैनके राजा चन्द्रगुप्तको उनके वियोगका बड़ा दुःख हुआ। इससे उन्होंने दीक्षा लेली और भद्रबाहु आचार्यकी सेवामें रहे।

(१२) आचार्य भद्रबाहुकी थोड़ी आयु रह गई थी इसलिए उन्होंने उज्जैनीमें एक बड़के पेड़के नीचे समाधि लेली और भूख प्यास आदिकी परीषह जीतकर स्वर्ग गमन किया।

(१३) सुभिक्ष होनेपर उनके शिष्य विशाखाचार्य आदि लौटकर उज्जयिनी आए। उस समय स्थूलाचार्यने अपने साथियोंको एकत्र करके कहा कि शिथिलाचार अब छोड़दो पर अन्य साधुओंने उनके उपदेशको नहीं माना और क्रोधित हो उन्हें मार डाला। स्थूलाचार्य मरकर व्यंतरदेव हुए, उनके उपद्रव करनेपर वे कुलदेव मानकर पूजे गए। इन शिथिलाचारियोंसे 'अर्द्धफालक'—आधे वस्त्रवाले संप्रदायका जन्म हुआ।

(१४) उज्जयिनीमें चंद्रकीर्ति राजा था। उसकी कन्या वल्लभीपुरके राजाको व्याही गई। चन्द्रलेखाने अर्द्धफालक साधुओंके पास विद्याध्ययन किया, इसलिये वह उनकी भक्त थी। एकबार उसने अपने पतिसे साधुओंको अपने यहां बुलानेके लिये कहा। राजाने बुलानेकी आज्ञा दे दी। वे आए और उनका खूब धूमधामसे स्वागत किया गया। पर राजाको उनका वेष अच्छा न लगा। वे रहते तो थे नग्न पर ऊपर वस्त्र रखते थे। रानीने

अपने पतिकी आज्ञासे साधुओंके पास श्वेत वस्त्र पहिननेके लिए भेज दिए। साधुओंने उन्हें स्वीकार कर लिया, उस दिनसे वे सब साधु श्वेतांबर कहलाने लगे। इनमें जो साधु प्रधान थे उनका नाम जिनचन्द्र था।

पाठ २३।

महाराज चन्द्रगुप्त।

(१) वीर निर्वाण संवत् १६२ के लगभग मगधदेशके नन्द वंशमें चंद्रगुप्तका जन्म हुआ था। आपकी माताका नाम मुरा था। इसीसे आप मौर्यके नामसे प्रसिद्ध हुए।

(२) राजकुमार चंद्रगुप्तकी आयु जिस समय १२ वर्षके लगभग थी, उस समय महापद्म नामक नन्द राजाने अपना अधिकार मगधपर जमाया, उस समय चंद्रगुप्तकी माता उन्हें लेकर अपने पिताके यहां आगईं। चंद्रगुप्तने वहांपर शस्त्र तथा अन्य विद्याओंका अध्ययन किया।

(३) चंद्रगुप्त बड़े पराक्रमी और वीर थे, किसी प्रकार उनकी वीरताका पता राजा नन्दको लग गया। नंदके कोपसे बचनेके लिये चन्द्रगुप्त अपनी मातासे विदा मांग कर पश्चिम भारतकी ओर चला गया। उस समय ३२६ ई० पूर्व पंजाबमें सिकन्दर महानने सीमा प्रांत और पंजाबके कुछ हिस्सेपर अधिकार जमा लिया। चन्द्रगुप्तने सिकन्दरकी सेनामें रहकर उसका संचालन किया।

(४) ई० पूर्व ३२३ के जून महीनेमें सिकन्दरकी बाबुलमें मृत्यु हुई। यह सुनते ही पंजाब और सीमांतके राजा स्वाधीन हो गये। इन सबके नेता चन्द्रगुप्त बने और उत्तर पश्चिम भारतमें बल प्राप्त करनेके बाद उन्होंने मगध राज्यपर चढ़ाई करनेका विचार किया। इस समय चन्द्रगुप्तकी अवस्था २३ वर्षकी थी।

(५) जिस समय चंद्रगुप्तने मगधपर चढ़ाई करनेका संकल्प किया, उसी समय उसकी प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणिक्य ब्राह्मणसे भेंट हुई। एक समय राजा नन्दने चाणिक्यका अपमान किया था। चाणिक्य अपने अपमानका बदला चुकानेकी बाट देख रहा था। चंद्रगुप्तसे मिलकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और दोनों एक दूसरेके सहायक बन गये।

(६) सन् ईस्वीके ३२० वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्तने नीतिज्ञ चाणिक्य और सीमांत प्रदेशके पवनक आदि राजाओंके साथ मगध पर चढ़ाई की और नन्द राजाको समूल नष्ट कर मगधका राज सिंहासन प्राप्त किया। नंदराजाके बीस हजार घुड़सवार, दो लाख पैदल, दो हजार रथ और चार हजार हाथी उसके आधीन हुए।

(७) चन्द्रगुप्तने अपनी सैना वृद्धि की। उसकी सेनामें तीस हजार घुड़सवार, नौ हजार हाथी, छः हजार पैदल और बहुसंख्यक रथ थे। ऐसी दुर्जेय सैनाकी सहायतासे उन्होंने नर्मदा तक उत्तर भारतके सभी राजाओंको जीत लिया। चन्द्रगुप्त मौर्यके साम्राज्यका विस्तार बंगालकी खाड़ीसे अरब समुद्र तक होगया और वह सर्वथा भारतके प्रथम ऐतिहासिक चक्रवर्ती सम्राट् कहलानेके अधिकारी हुए।

(८) चन्द्रगुप्त भारतमें अपने साम्राज्यको बढ़ाने और पुष्ट करनेमें लगे थे। उधर पश्चिम एशियामें सिकन्दरका एक सेनापति अपनी शक्ति बढ़ाकर सिकन्दरके जीते हुए भारतीय प्रान्तोंको चंद्र गुप्तसे छीन लेनेकी तैयारी कररहा था। उसका नाम सेल्यूकस था। उसने सिंधुनदी पार की। वह पहिली लड़ाईमें ही चन्द्रगुप्तकी सेनाका धक्का न संभाल सका और उसे दबकर संधि करनी पड़ी। उसने अपने साम्राज्यके काबुल, कंधार, हिरात और मकरान प्रदेश चन्द्रगुप्तको दिए। इसके बदलेमें चन्द्रगुप्तने ५०० हाथी उसे दिए। इतना ही नहीं, वह विजयी मौर्य सम्राट्को अपनी बेटी भी ब्याह देनेको बाध्य हुआ। इस तरह दो हजार वर्ष पहलेसे भी भारतीय सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य इन काबुल, कंधार आदि प्रदेशोंपर भारतीय पताका उड़ानेमें समर्थ हुए थे, जिनपर न कभी दिल्लीके मुगल सम्राटोंकी जीत हुई और न अंग्रेजी राज्यको ही ऐसा देखना नसीब हुआ।

(९) ई० पूर्व ३०३ में चन्द्रगुप्त मौर्य संपूर्ण उत्तर भारतके राजा बन गये और भारतके विदेशी नरेशकी सत्ता समाप्त करदी। और अपने बाहुबलसे काबुल, कंधार, हिरात आदिमें हिन्दुओंका प्राधान्य स्थापित किया। उन्होंने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र कायम की और चाणिक्यको प्रधानमंत्री नियुक्त किया। चंद्रगुप्तके राज्यमें प्राणी मात्रके हितका ध्यान रक्खा गया था।

(१०) यूनान देशका मेगस्थनीज नामक राजदूत उनके दरबारमें आकर रहता था। उसने मौर्य साम्राज्यके आदर्श और

अनुकरणीय शासनका विवरण लिखा है। चन्द्रगुप्तका आदर्श उसके राजकौशल और पराक्रमके लिये उसका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित रहेगा।

(११) चंद्रगुप्त पहले ही विजयी सम्राट् थे, जिनका शासन विदेशों तकमें था। उनका राज्यशासन प्रत्येक प्राणीके लिए सुख-कर था।

(१२) चन्द्रगुप्तको बालकालसे ही जैन धर्मपर श्रद्धा थी। श्री भद्रबाहु श्रुतकेवली उनके धर्मगुरु थे। जैन मुनि उनके राज्यमें सदैव विहार करते थे। वह बड़ी भक्ति और श्रद्धासे उनको आहार-दान देते थे।

(१३) एक समय महाराजा चन्द्रगुप्त रात्रिको निद्रामें थे तब उन्होंने पिछले पहरमें नीचे लिखे हुए सोलह स्वप्न देखे—

(१) सूर्यको अस्त होता हुआ देखा।
(२) धूलसे आच्छादित रत्नराशि देखी।
(३) कल्पवृक्षकी शाखा टूटती हुई देखी।
(४) समुद्रको सीमा उल्लंघन करते देखा।
(५) बारह फणवाला सर्प देखा।
(६) देव विमानको उलटते देखा।
(७) ऊँटपर चढ़ा हुआ राजपुत्र देखा।
(८) दो काले हाथियोंको लड़ते देखा।
(९) रथमें २ बछड़ोंको जुता हुआ देखा।
(१०) बन्दरको हाथीपर चढ़ा हुआ देखा।
(११) भूतप्रेतोंको नाचते हुए देखा।

(१२) सोनेके बर्तनमें कुत्तेको भोजन करते देखा।

(१३) जुगनूको चमकते देखा।

(१४) सूखा तालाब देखा।

(१५) धूलमें खिला हुआ कमल देखा।

(१६) चन्द्रमामें छिद्र देखा।

(१२) सबेरे उठते ही वे स्वप्नोंका फल पूछनेके लिए अपने गुरु श्री भद्रबाहु स्वामीके निकट पहुंचे। उन्होंने गुरुदेवको नमस्कार कर स्वप्नोंका फल पूछा।

(१३) श्री भद्रबाहुसे स्वामीने स्वप्नोंको सुनकर उनका फल बतलाया। और उनसे कहा कि इन स्वप्नोंके फलस्वरूप मगध देशमें घोर अकाल पड़ेगा। उन्होंने इस तरहसे १६ स्वप्नोंका फल बतलाया जिससे महाराजाको संतोष हुआ—

(१) द्वादशांग श्रुतके पाठिओंका अभाव होगा।

(२) मुनियोंमें परस्पर फूट होगी और अनेक संघ स्थापित होंगे।

(३) क्षत्रियलोग जैन धर्म धारण नहीं करेंगे।

(४) राजा नीतिका पालन नहीं करेंगे।

(५) बारह वर्षका अकाल पडेगा।

(६) भारतमें अब देवताओंका आगमन नहीं होगा।

(७) भारतके राजा जैनधर्मको छोडकर मिथ्यामार्ग ग्रहण करेंगे।

(८) असमयमें थोड़ी वर्षा होगी।

(९) बालअवस्थामें धर्म धारण करेंगे परन्तु युवावस्थामें धर्मकी रुचि नहीं रहेगी।

(१०) नीच जातिके पुरुष राज प्राप्त करेंगे।

(११) कुदेवोंकी विशेष रूपसे पूजा होगी।

(१२) धनी लोग अनेक कुकर्मोंमें रत होंगे।

(१३) जैन धर्मका प्रभाव कम होगा।

(१४) दक्षिण प्रांतमें ही जैन धर्मका विशेष रूपसे प्रभाव रहेगा।

(१५) ब्राह्मणोंमें जैन धर्म नहीं रहेगा, केवल वैश्योंमें ही जैन धर्म रहेगा।

(१६) जन धर्ममें अनेक पन्थ और संपदाय होंगे।

(१४) श्री भद्रबाहुस्वामी जब दुर्भिक्षके कारण दक्षिण भारतको जाने लगे उस समय चन्द्रगुप्तने भी राज्य छोड़कर उनके पास जन मुनिकी दीक्षा धारण की और मुनि होकर उनकी सेवाके लिए साथ होगए।

(१५) चन्द्रगुप्त जैन मुनि होकर भद्रबाहुस्वामीके साथ दक्षिण भारत पहुंचे और श्रवणबेलगोल नामक स्थानपर ठहर गए। वहांपर एक छोटीसी पहाड़ीपर गुरु शिष्यने तपस्या की और उनका समाधिमरण भी वहीं हुआ।

पाठ २४।

सम्राट ऐल खारवेल।

(१) राजा खारवेलका जन्म सन् ई०से १९७ वर्ष पूर्व अशोककी मृत्युके ४० वर्ष पीछे हुआ था। इनके पिताका नाम चेतराज था। ये कलिंग देशके राजा थे।

(२) १२ वें वर्षमें आपको युवराज पद प्राप्त हुआ और सोलहवें वर्षमें ही पिताकी मृत्युके पश्चात् ये राज्यशासन करने लगे।

(३) पच्चीसवें वर्षमें आपका राज्याभिषेक हुआ और आप राजा होगए।

(४) राजा खारवेलने कलिंगकी प्राचीन राजधानी तोशालीको अपनी राजधानी बनाई। आपकी प्रजाकी संख्या ३५ लाख थी।

(५) राज्य प्राप्त होनेके दूसरे वर्षमें आपने दिग्विजयके लिए प्रयाण किया और पश्चिमके अनेक राजाओंको जीतकर उनपर अपना अधिकार जमाया। उन्होंने २ वर्षमें काश्यप, मुशिक, राष्ट्रिक और भोजक क्षत्रिय राजाओंको जीतकर उन्हें अपने आधीन बनाया।

(६) दक्षिण भारतके पांड्य आदि देशोंके राजाओंने अपने आप 'भेंट' भेजकर मैत्री स्थापित की। दक्षिण भारतका प्रबल राजा शतकर्णि भी निर्बल होगया। इस तरह दक्षिण भारतमें भी खारवेलका प्रताप परिपूर्ण होगया।

(७) उत्तर भारतका प्रतापी राजा पुष्पमित्र मगधका

राज्याधिकारी था। उसने मौर्यवंशका संहार किया था। खारवेलने पुष्पमित्रको परास्त करनेका दृढ़ संकल्प किया और वे सेना लेकर मगधकी ओर चल पड़े और गोरथगिरि पर उन्होंने अपना अधिकार जमाया। कई कारणोंसे वे वापिस कलिंग लौट आए। खारवेलके इस आक्रमणकी खबर यूनानके डिमिसष्ट्रियस बादशाहको लगी। उसने मथुरा पंचाल और साकेत पर अपना अधिकार जमा लिया था। इस खबरसे वह अपनी सैना लेकर पीछे हट गया।

(८) राज्यकालके १२ वें वर्षमें खारवेलने उत्तरकी ओर आक्रमण किया। मार्गके अनेक राजाओं पर विजय करते हुए वे मगधकी राजधानीके पास पहुंच गए और गंगा नदीको पारकर पाटलीपुत्रमें दाखिल होगए। उन्होंने नंदकालके प्रसिद्ध महल सुगङ्गको घेर लिया। शुङ्गनृप पुष्पमित्र इस समय वृद्ध होगए थे। उनका पुत्र बृहस्पति मित्र मगधका शासक था। उसने खारवेलकी आधीनता स्वीकार की और अनेक बहुमूल्य रत्नादि भेटमें दिए। वहांसे वे 'कलिङ्ग जिन' की प्रसिद्ध मूर्ति ले आए, जिसे नन्दराज कलिङ्गसे लाए थे।

(९) खारवेलने सारे भारतपर विजय प्राप्त की। पांड्य देशसे लेकर उत्तरापथ और मगधसे लेकर महाराष्ट्र देशतक उनकी विजयपताका फहराती थी।

(१०) खारवेलने प्रजाहितके लिए 'तनसुलिय' नामक स्थानसे नहर निकलवाई, और एक बड़े तालाबका जीर्णोद्धार कराया।

(११) प्रजाकी सुविधाके लिए उन्होंने "पौर" और 'जान-

पद' संस्थाओंको स्थापित किया और प्रजाकी सम्मतिके अनुकूल शासन किया। 'पौर' संस्थाका संबंध राजधानी और नगरोंके शासनसे था। और 'जानपद' संस्था ग्रामोंका शासन करनेके लिये नियुक्त थी।

(१२) खारवेल बड़े दानी थे। उन्होंने राज्यके नवे वर्षमें अर्हत भगवानका अभिषेक करके उत्सव मनाया था और अड़तीस लाख चांदीके सिक्कोंसे प्राचीन नदीके तट पर 'महाविजय' प्रासाद बनवाया और ब्राह्मण तथा अन्य लोगोंको 'किमिच्छक' दान दिया।

(१३) राजा खारवेलने कुमारी पर्वतपर जैन मुनियोंके रहनेके लिए गुफाएं और मंदिरादि बनवाए और जैन धर्मका महा अनुष्ठान किया। उस सम्मेलनमें भारतके जैन यति और पण्डितगण उपस्थित हुए थे। इसके लिए अखिल जैन संघने उन्हें 'भिक्षुराज' और 'धर्मराज' की उपाधि दी और उनका जीवनचरित्र पाषाण शिलापर लिखा गया। यह शिलालेख उड़ीसा प्रांतके खंडगिरि—उदयगिरि पर्वतकी हाथी गुफामें मौजूद है और जैन इतिहासके लिए बड़े महत्वकी वस्तु है।

(१४) शिलालेखमें सन् १७० ई० पूर्वतक खारवेलकी जीवन घटनाओंका उल्लेख है। उस समय उनकी आयु करीब ३७ वर्षकी थी। उनका स्वर्गवास सन् १५२ ई० पूर्वके लगभग हुआ है, उनके बाद उनका पुत्र कुदेपश्री खारमहामेघवाहन राजा हुआ।

वीरसंघके कुछ आचार्य।

(लेखक-बाबू कामताप्रसादजी जैन, अलीगंज।)

पाठ २५।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य।

"मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दाद्यो, जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलं॥"

(१) दिगम्बर जैन सम्प्रदायमें भगवान् कुन्दकुन्दस्वामीका आसन बहुत ऊंचा है। जैन मंदिरोंमें प्रतिदिन उपरोक्त श्लोकको दुहराकर भक्तजन उनकी गिनती गणधर गौतमके बाद करते हैं। सचमुच दिगम्बर संप्रदायका मूलाधार इन आचार्यप्रवरके महान् व्यक्तित्वमें स्थित है। यदि कुन्दकुन्दाचार्य न होते तो शायद ही दिगम्बर संप्रदाय कभी उन्नतशील होता।

(२) अन्य प्रसिद्ध दिगम्बर आचार्योंकी तरह भगवत् कुन्दकुन्दका सम्बन्ध दक्षिण भारतसे है। दक्षिणभारतमें ईस्वी पहली शताब्दिके लगभग पिदथनाडु नामका एक प्रदेश था। उस प्रदेशमें कुरुमरई नामक एक गांव था। गांव कुरुमरईमें एक धनी वैश्य रहते थे। उनका नाम करमुण्ड था। सेठ करमुण्डकी पत्नी

श्रीमती थी। उनके मतिवरण नामका ग्वाला-चरवाहा नौकर था।

(३) चरवाहा मतिवरण एक दिन गौवोंको चरानेके लिये जंगलकी ओर जा रहा था। उसने देखा, वनाग्निसे सारा जंगलका जंगल भस्म होगया है, केवल बीचमें कुछ पेड़ हरे भरे बच रहे हैं। यह देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ, और वह उन पेड़ोंको देखनेके लिये उनकी ओर लपक गया। वहां उसने एक मुनि महाराजकी बसतिका देखी और वहीं एक सन्दूकमें आगम ग्रन्थ रक्खे हुए पाए। *उसने आगम ग्रन्थ उठा लिए और ले जाकर अपने घरमें* रख छोड़े।

(४) सेठ करमुण्डके कोई पुत्र न था। सेठानी श्रीमती इस कारण बड़ी उदास रहती थी। किंतु सेठ धर्मात्मा था। वह धर्मकी बातें सुना और धर्म-कर्म कराकर सेठानीका मन बहलाये रखता था। एक रोज उनके यहां एक प्रतिभाशाली मुनिराजका शुभागमन हुआ। उन्होंने पड़गाह कर भक्तिभावसे मुनिराजको आहारदान दिया और इस दानके द्वारा अमित पुण्य संचय किया। उन्हें विश्वास होगया कि अब हमारे भाग्य खुलेंगे। उधर, चरवाहे मतिवरणने उन मुनिराजको आगम ग्रन्थ प्रदान किये। इस शास्त्रदानके प्रभावसे उसके ज्ञानावरणीय कर्म क्षीण-बंध होगये और वह मरकर सेठ करमुण्डकी सेठानी श्रीमतीकी कोखसे उनके पुत्र हुआ। यही तीक्ष्णबुद्धि पुत्र आगे चलकर भगवत् कुन्दकुन्द हुये।

(५) सेठ-सेठानी पुत्रका मुंह देखकर फूले अङ्ग न समाते थे। 'होनहार बिरवानके, होत चीकने पात।' सेठजीका पुत्र भी

भाग्यशाली था । वह बचपनसे ही असाधारण व्यक्तित्व बनाये हुये था । देखते ही देखते वह सब विद्याओं और कलाओंमें निपुण होगया । धर्मात्मा माता-पिताओंका पुत्र भला धर्म-कर्मका मोही भी क्यों न होता ? जैन धर्ममें उसकी विशेष आस्था थी । उसका चित्त संसारसे विरत और परमार्थमें रत रहता था ।

(६) एक दिन श्री जिनचन्द्राचार्यका विहार करमुण्ड सेठके गांवमें हुआ । सेठ सेठानी पुत्र सहित आचार्य महाराजकी वन्दना करने गये । उन्होंने मुनिराजकी धर्म-देशना सुनी । सेठपुत्र प्रति-बुद्ध होगये । वह घर न लौटे । माता-पितासे आज्ञा लेकर मुनि होगये । मुनि दशामें उन्होंने घोर तपश्चरण किया । मलय देशके अन्तर्गत हेम ग्राम (पोन्नूर) के निकट स्थित नीलगिरी पर्वत उनकी तपस्यासे पवित्र हो चुका है । पहाड़की चोटीपर उनके चरण-चिह्न भी विद्यमान हैं ।

(७) उस समय कांचीपुर दक्षिण भारतमें जैनधर्मका केन्द्र था । साधु कुंदकुंदका अधिक समय संभवतः यहीं व्यतीत हुआ था। पट्टावलियोंमें उन्हें श्री जिनचन्द्राचार्यका शिष्य लिखा है और बताया है कि ई० पूर्व सन् ८ में उन्हें आचार्य पद प्राप्त हुआ । था । इस अवस्थामें उनका जन्म ई० पूर्व सन् ५२ में हुआ सम-झना चाहिये; क्योंकि पट्टावलीके अनुसार वह ११ वर्ष गृहस्थ दशामें और ३३ वर्ष साधु रूपमें रहे थे । आचार्यपदपर वह लगभग ९६ वर्षकी दीर्घायु उन्होंने पाई थी ।

(८) कुन्दकुन्दाचार्यने एक दिन ध्यानमें विदेह देशमें

विद्यमान तीर्थंकर सीमन्धरस्वामीका स्मरण किया था। तीर्थंकर भगवानने परोक्ष रूपमें धर्म लाभ दिया था, जिसे सुनकर दो 'चारण' देव उनके दर्शन करने यहां आये थे और आखिर वे उन्हें पूर्व विदेह लेगये थे, जहां इन्होंने तीर्थंकर भगवानके साक्षात् दर्शन किये थे। तीर्थंकर भगवानके निकट उन्होंने सिद्धांत ग्रन्थोंका अध्ययन किया था और वह (१) मतांतर निर्णय, (२) सर्वशास्त्र, (३) कर्मप्रकाश, (४) न्यायप्रकाश नामक चार ग्रन्थ वहांसे अपने साथ ले आये थे।

(९) पूर्व विदेह जाते हुये कुन्दकुन्दाचार्यकी मोरपिच्छिका विमानसे उड़कर गिर गई थी और उन्हें काम चलानेके लिये गिद्ध पक्षीके परोंकी पिच्छिका दे दी गई थी। इस कारण वह 'गृद्धपिच्छिकाचार्य' नामसे भी प्रसिद्ध होगये थे। तथापि सीमन्धरस्वामीके समोशरणमें पूर्वविदेहके चक्रवर्ती सम्राट्ने उन्हें मुनियोंमें सबसे छोटा देखकर उनकी विनय 'ऐला (छोटे) चार्य' नामसे की थी। कुण्डकौण्ड नामक देशसे उनका घनिष्ट सम्पर्क रहा था, इसलिये ही 'कुण्डकौण्डाचार्य' नामसे प्रख्यात् हुये थे। इन्हींका श्रुतिमधुर नाम 'कुन्दकुन्द' है।

(१०) पूर्व विदेहसे लौटकर आचार्य महोदय धर्मप्रचार और सिद्धांत ग्रन्थोंके अध्ययनमें ऐसे लीन होगये कि उन्हें अपने शरीरकी भी सुध न रही। उस अथक परिश्रमसे समय बेसमय धर्मध्यानमें लगे रहनेका परिणाम यह हुआ कि गरदन झुकाये रक्खे २ उनकी गरदन टेढ़ी होगई। लोग उन्हें 'वक्रग्रीव' कहने

लगे। किंतु उपरांत योग साधनसे वह ठीक होगई थी। लगन इसीको कहते हैं।

(११) उस समय दक्षिण भारतमें विद्या व्यसन जोरोंपर था। मैलापुर तामिल विद्वानोंका घर था और वहां एक " विद्वत् समाज " स्थापित था। जैनियोंकी भी वहांपर अच्छी चलती थी। श्री कुंदकुंद ऐलाचार्यने तामिलमें 'कुरल' नामका एक महाकाव्य रचा और थिरुवल्लुवर नामक अपने शिष्यके हाथ उसे विद्वत् समाजमें पेश करनेके लिये भेज दिया। विद्वत् मण्डलने उसे खूब पसंद किया और वह तामिल साहित्यका एक रत्न बन गया। सचमुच नीतिका वह अपूर्व ग्रन्थ है और तामिल देशमें वह 'वेद' माना जाता है। उसकी रचना ऐसी उदार दृष्टिसे की गई है कि प्रत्येक धर्मका अनुयायी उसे अपना मान्य ग्रन्थ स्वीकार करनेके लिये उतावला होजाता है। श्री कुंदकुंदाचार्यके समान धर्माचार्यकी कृति सांप्रदायिकतासे अछूती रहना ही चाहिये थी!

(१२) 'कुरल' के अतिरिक्त तामील भाषामें और किन ग्रन्थोंकी रचना श्री कुन्दकुन्दस्वामीने की, यह ज्ञात नहीं है। किंतु तामिलके अतिरिक्त वह प्राकृत भाषाके भी प्रौढ़ विद्वान् थे और इस भाषामें उन्होंने जैन सिद्धांतके अनेक ग्रन्थ लिखे थे; जिनमें 'प्राभृतत्रय', षट्पाहुड, नियमसार आदि उल्लेखनीय हैं। 'प्राभृतत्रय' को उन्होंने पल्लववंशके राजा शिवकुमार महाराजके लिये लिखा था। कुन्दकुन्दाचार्यको यह राजा अपना गुरु मानता था और उनके धर्म-प्रचारमें वह विशेष सहायक था। दिगम्बर संप्रदायमें आज

कुन्दकुन्दाचार्यके ये ग्रन्थ ही आगम ग्रन्थ होरहे हैं और इसीसे इन ग्रन्थोंका महत्व स्पष्ट है।

(१३) एक दफा श्री कुंदकुंदाचार्य एक बड़ासा संघ लेकर, जिसमें ५९४ तो मुनि ही थे, श्री गिरनारजीकी यात्राके लिये वहां पहुंचे थे। उसी समय श्वेताम्बर संप्रदायका भी एक संघ शुक्लाचार्यकी अध्यक्षतामें वहां आया था। श्वेताम्बर लोग चाहते थे कि पहले हमारा संघ यात्रा करे क्योंकि वही प्राचीन जैन संप्रदाय है! इसपर कुंदकुंदाचार्यका शास्त्रार्थ शुक्लाचार्यसे हुआ, जिसमें कुंदकुंदाचार्यके मंत्रबलसे 'सरस्वतीदेवी' ने कहा कि दिगम्बर मत ही प्राचीन है और तब दिगम्बर संघने ही पहले पर्वतकी यात्रा की। इसी समय कुंदकुंदस्वामीने अपने कमण्डलुमें कमल-पुष्प प्रगट करके लोगोंको चकित किया था। इस कारण वह 'पद्मनंदि' नामसे प्रसिद्ध होगये थे।

(१४) उपरांत अनेक देशोंमें विहार करके और मुमुक्षुओंको जैनधर्मकी दीक्षा देते हुए श्री कुंदकुंदाचार्य दक्षिण भारतको लौट गये। वहां अपना निकट समय जानकर वह योग-निरत होगये। ध्यान-खड्ग लेकर कर्मशत्रुओंसे वह लड़ने लगे। वह सच्चे आत्मवीर थे और थे युग-प्रधान महापुरुष। आखिर सन् ४२ के लगभग वह इस नश्वर शरीरको त्यागकर स्वर्गधाम सिधार गये।

पाठ २६।

आचार्यप्रवर उमास्वामी !

तत्वार्थसूत्रकर्त्तारमुमास्वामिमुनीश्वरम्।
श्रुतकेवलिदेशीयं वन्देहं गुणमन्दिरम्॥

(१) आचार्य प्रवर उमास्वामी (उमास्वाति) का नाम 'तत्वार्थसूत्र' नामक ग्रन्थके कारण अजर अमर है। यह ग्रन्थ जैनोंकी 'बाईबिल' है और खूबी यह कि संस्कृत भाषामें सबसे पहला यही जैन ग्रंथ है। सचमुच आचार्य उमास्वामीने ही जैन सिद्धांतको प्राकृतसे संस्कृत भाषामें प्रगट करनेका श्रीगणेश किया था और फिर तो इस भाषामें अनेकानेक जैनाचार्योंने ग्रन्थ रचना की।

(२) श्री उमास्वामीकी मान्यता जैनोंके दोनों सम्प्रदायों दिगम्बर और श्वेतांबरमें समान रूपसे है। और उनका 'तत्वार्थसूत्र' ग्रन्थ भी दोनों संप्रदायोंमें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है।

(३) किंतु ऐसे प्रख्यात आचार्यके जीवनकी घटनाओंका ठीक हाल ज्ञात नहीं है। श्वेतांबरीय शास्त्रोंसे यह जरूर विदित है कि न्यग्रोधिका नामक नगरीमें उमास्वामीका जन्म हुआ था। उनके पिताका नाम स्वाति और माताका नाम वात्सी था। वह कौभीषणि गोत्रके थे; जिससे उनका ब्राह्मण या क्षत्री होना प्रगट है। उनके दीक्षागुरु ग्यारह अंगके धारक घोषनंदि श्रमण थे और विद्याग्रहणकी दृष्टिसे उनके गुरु मूल नामक वाचकाचार्य थे। उमास्वामी भी

वाचक कहलाते थे और उन्होंने 'तत्वार्थसूत्र' की रचना कुसुमपुर नामक नगरमें की थी।

(४) दिगंबर शास्त्रोंमें उनके गृहस्थ जीवनका कुछ भी पता नहीं चलता है। साधु रूपमें वह श्री कुंदकुंदाचार्यके पट्ट शिष्य बताये गये हैं और श्री 'तत्वार्थसूत्र' की रचनाके विषयमें कहा गया है कि सौराष्ट्र देशके मध्य ऊर्जयंतगिरिके निकट गिरिनगर नामके पत्तनमें आसन्न भव्य, स्वहितार्थी, द्विजकुलोत्पन्न श्वेतांबर भक्त सिद्धय्य' नामक एक विद्वान श्वेतांबर मतके अनुकूल सकल शास्त्रका जाननेवाला था। उसने ' दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ' यह एक सूत्र बनाया और उसे एक पाटियेपर लिख छोड़ा। एक समय चर्यार्थ श्री गृद्धपिच्छाचार्य 'उमास्वामि' नामके धारक मुनिवर वहांपर आये और उन्होंने आहार लेनेके पश्चात् पाटियेको देखकर उसमें उक्त सूत्रके पहले ' सम्यक् ' शब्द जोड़ दिया। जब वह सिद्धय्य विद्वान वहांसे अपने घर आये और उसने पाटियेपर ' सम्यक् ' शब्द लगा देखा, तो उसने प्रसन्न होकर अपनी मातासे पूछा कि, किस महानुभावने यह शब्द लिखा है? माताने उत्तर दिया कि एक महानुभाव निर्ग्रन्थाचार्यने यह बनाया है। इसपर वह गिरि और अरण्यको ढूंढ़ता हुआ उनके आश्रममें पहुंचा और भक्तिभारसे नम्रीभूत होकर उक्त मुनिमहाराजसे पूछने लगा कि आत्माका हित क्या है? मुनिराजने कहा, 'मोक्ष' है। इसपर मोक्षका स्वरूप और उसकी प्राप्तिका उपाय पूछा गया, जिसके उत्तररूपमें ही इस ग्रंथका अवतार हुआ है।" इसी कारण इस ग्रंथका अपर नाम 'मोक्षशास्त्र' भी है। कैसा अच्छा वह समय

था, जब दिगम्बर और श्वेताम्बर आपसमें प्रेमसे रहते हुये धर्म-प्रभावनाके कार्य कर रहे थे। श्वेताम्बर उपासक सिद्धसेनके लिये एक निर्ग्रन्थाचार्यका शास्त्ररचना करना इसी वात्सल्यभावका द्योतक है। यह निर्ग्रन्थाचार्य श्री उमास्वामिके अतिरिक्त और कोई न थे।

(५) इसके अतिरिक्त धर्म और संघके लिये उनने क्या क्या किया, यह कुछ ज्ञात नहीं होता। इस कारण इन महान् आचार्यके विषयमें इस संक्षिप्त वृत्तान्तसे ही संतोष धारण करना पड़ता है। दिगम्बर संप्रदायमें वह श्रुतिमधुर 'उमास्वामी' के नामसे और श्वेताम्बर संप्रदायमें 'उमास्वाति' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

पाठ २७।

स्वामी समन्तभद्राचार्य।

'समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारत-भूषणः।'

(१) स्वामी समन्तभद्राचार्य जिनशासनके नेता थे और वह थे भारत भूषण! एक मात्र भद्र प्रयोजनके लिये उन्होंने लोकका उपकार करके भारतका मस्तक ऊंचा कर दिया था।

(२) स्वामी समन्तभद्राचार्यको जन्म देनेका श्रेय भी दक्षिणभारतको प्राप्त है। ईस्वीकी प्रारम्भिक शताब्दियोंमें कदम्ब-राजवंश भारतमें प्रसिद्ध था। इस वंशके प्रायः सब ही राजा जैन धर्मानुयायी थे। स्वामीजीने संभवतः इसी राजवंशको अपने जन्मसे सुशोभित किया था। उनके माता-पिताके नाम और उनकी

जन्मतिथि क्या थी, इसका पता आजतक नहीं लगा। किन्तु यह स्पष्ट है कि उनके पिता फणिमंडलान्तर्गत 'उरगपुर' के क्षत्रीराजा थे। उरगपुर तब कावेरी नदीके किनारे बसा हुआ था। वह बन्दरगाह और एक बड़ा ही समृद्धिशाली जनपद था। जैनोंका वह केन्द्र था। इसी जैन केन्द्रमें स्वामीजीका बाल्यजीवन व्यतीत हुआ था।

(३) तब स्वामी समन्तभद्राचार्य 'शान्तिवर्म्म' नामसे प्रसिद्ध थे। शांतिवर्म्मने बहुत करके अपनी शिक्षा दीक्षा उरगपुरमें ही पाई थी! पर यह नहीं कहा जासक्ता कि उन्होंने गृहस्थावस्थामें प्रवेश किया था या नहीं! हां, यह स्पष्ट है कि वह छोटी उम्रमें ही संसारसे विरक्त होकर साधु होगये थे। सचमुच बाल्यावस्थासे ही समन्तभद्रने अपनेको जिनशासन और जिनेन्द्रदेवकी सेवाके लिए अर्पण कर दिया था। उनके प्रति आपको नैसर्गिक प्रेम था और आपका रोम २ उन्हींके ध्यान और उन्हींकी वार्ताको लिये हुये था। आपकी धार्मिक परिणतिमें कृत्रिमताकी जरा भी गंध नहीं थी। आप स्वभावसे ही धर्मात्मा थे और आपने अपने अन्तःकरणकी आवाजसे प्रेरित होकर ही जिनदीक्षा धारण की थी।

(४) सच बात तो यह है कि समन्तभद्र्जी युगप्रधान पुरुष थे। क्रांति उनके जीवनका मूल सूत्र था। कोई भी बात उन्हें इसलिये मान्य नहीं थी कि वह पुरातन प्रथा है अथवा किसी अन्य पुरुषने उसको वैसा ही बताया है। बल्कि वह 'सत्य'की कसौटीपर हर बातको कस लेना आवश्यक समझते थे। जैन मुनि होनेके पहले उन्होंने स्वयं जिनेन्द्रदेवके चारित्र और गुणकी जांच की थी और

जब उन्हें 'न्यायविहित और अद्भुत उदय सहित पाया, तो सुप्रसन्नचित्तसे जिनेन्द्रदेवकी सच्ची सेवा और भक्तिमें लीन होगये।' इस भावको उन्होंने अपने इस पद्यसे ध्वनित किया है:—

अत एव ते बुधनुतस्य चरितगुणमद्भुतोदयम्।
न्यायविहितमवधार्य जिने त्वयि सुप्रसन्नमनसः स्थिता वयम्
॥ १३० ॥—युक्त्यनुशासन।

(५) एक युगवीरके लिये यह कार्य ठीक भी था। मनुष्य एक टकेकी हांडीको ठोक बजाकर लेता है, तब धार्मिक बातोंमें अन्ध अनुसरण करना बुद्धिमत्ता नहीं कही जासकती। समंतभद्र जैसे विद्वान् भला यह गल्ती कैसे करते?

(६) स्वामी समन्तभद्रने जिन दीक्षा कांची या उसके सन्निकट ही कहीं ग्रहण की थी। और कांची (Conjeevarem) ही उनके धार्मिक उद्योगोंका केन्द्र था। 'राजावलीकथे' नामक ग्रंथमें लिखा है कि वहां वह अनेकबार पहुंचे थे। उसपर समन्तभद्रजी स्वयं कहते हैं कि "मैं कांचीका नग्न साधु हूं।" (कांच्यां नग्नाटकोऽहं) किन्तु फिर भी आपके गुरुकुलका कुछ भी परिचय नहीं मिलता। किस महानुभावको आपका दीक्षागुरु होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, यह कहा नहीं जासक्ता। हां, यह विदित है कि आप 'मूलसंघ' के प्रधान आचार्योंमें थे। विक्रमकी १४ वीं शताब्दीके विद्वान् कवि हस्तिमल्ल और अय्यपार्यने 'श्री मूलसंघ व्योमेन्दुः' विशेषणके द्वारा आपको मूलसंघ रूपी आकाशका चन्द्रमा लिखा है।'

(७) जैन साधु होकर स्वामीजीने गहन तपश्चरण और अटूट ज्ञान संचय करनेमें समय व्यतीत किया था। उन्होंने दिगम्बर साधुका पवित्र भेष मात्र दिखावे, अथवा ख्यातिलाभ या अन्य किसी लालचसे धारण नहीं किया था और न उन्होंने कभी किसी अन्य व्यक्तिकी चापलूसीमें आकर अथवा इन्द्रियोंके विषयमें गृद्ध होकर मुनिपदको लाञ्छित ही किया था। उन्होंने ऐसे मोही और नामके द्रव्यलिङ्गी मुनि-भेषियोंकी अच्छी भर्त्सना की है। उनका मत था कि "निर्मोही (सम्यग्दृष्टि) गृहस्थ मोक्षमार्गी है, परन्तु मोही मुनि मोक्षमार्गी नहीं, और इसलिये मोही मुनिसे निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है।" उनका साधु जीवन, उनकी इस उक्तिका अच्छा प्रतिबिंब है।

(८) स्वामीजीके शांत और ज्ञानमय साधु जीवनमें उनपर एक बार अचानक विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा था। स्वामीजी मणुवकहल्ली ग्राममें विचर रहे थे। एकाएक पूर्व संचित असाता वेदनीय कर्मके तीव्र उदयसे उनके शरीरमें 'भस्म' नामक महा रोग उत्पन्न होगया। स्वामीजीको शरीरसे कुछ ममत्व तो था नहीं, शुरू २ में उन्होंने इस रोगकी जरा भी परवाह न की! क्षुधातृषा परीषहोंकी तरह वे इसको भी सहन करने लगे। किंतु सामान्य क्षुधा और इस 'भस्म क्षुधा'में बड़ा अन्तर था। उपरांत समन्तभद्रजीको इससे बड़ी वेदना होने लगी। उसपर भी उन्होंने न तो किसीसे दुबारा भोजनकी याचना की और न स्निग्ध व गरिष्ठ भोजनके तैयार करनेके लिये प्रेरणा की। बल्कि वस्तुस्थितिको विचार कर वे अनित्यादि भाव-

नाओंका चिंतवन करते रहे। किन्तु रोग उत्तरोत्तर बढ़ता गया और स्वामीजीके लिये वह असह्य होगया। उनकी दैनिक चर्यामें भी बाधा पड़ने लगी। स्वामीजीने देखा कि अब उनके लिये शास्त्रोक्त मुनि जीवन बिताना असम्भव है, इसलिये उन्होंने 'सल्लेखना' व्रत अंगीकार कर लेना उचित समझा। शरीरके लिये अपने धर्मको छोड़ देना उनके लिए एक अनहोनी बात थी। अपने गुरुसे यह व्रत ग्रहण करनेकी आज्ञा मांगी। वयोवृद्ध तपोधन गुरुमहाराज कुछ देरतक मौन रहकर स्वामीजीकी ओर देखते रहे। उन्होंने अपने योगबलसे जान लिया कि समन्तभद्र अल्पायु नहीं हैं; बल्कि उनके द्वारा धर्म और शासनके उद्धारका महान् कार्य होनेको है। बस, उन्होंने समन्तभद्रको सल्लेखना करनेकी आज्ञा नहीं दी; प्रत्युत आदेश किया कि जिस वेशमें जैसे हो रोगके शांत करनेका उपाय करो। क्योंकि रोगके शांत होनेपर पुन: प्रायश्चित्त पूर्वक मुनिधर्म धारण किया जासक्ता है। गुरुमहाराजका यह आदेश गंभीर और दूरदर्शिता एवं लोकहितकी दृष्टिको लिये हुए था। शरीर ही तो धर्मकार्य करनेका मुख्य साधन है। यदि किसी उपाय द्वारा वह साधन प्राप्त होसक्ता और उसके द्वारा धर्मका महान उत्कर्ष होसक्ता हो, तो बुद्धिमत्ता इसीमें है कि शरीरको उपयुक्त बनालेनेका उपाय करे।

(९) समंतभद्रजीने गुरुजीकी आज्ञाको शिरोधार्य किया। उन्होंने परम श्रेष्ठ दिगम्बर वेषको त्यागकर अपने शरीरको भस्मसे आच्छादित बना लिया। भस्मक रोगकी व्याधि उनके नेत्रोंको

आई न बना सकी थी, किंतु दिगम्बर मुनि वेषको सादर त्याग करते हुए उनकी आंखें डबडबा गईं। यह बड़ा ही करुण दृश्य था, परन्तु धर्मके लिये न करने योग्य कार्य भी एकबार करना पड़ता है। यही सोचकर स्वामीजी शांत होगये। उन्होंने कहा, 'भले ही जाहिरा मैं भस्म रमाये वैष्णव सन्यासी दीखता हूं, परन्तु भावोंमें-असलमें मैं दिगम्बर साधु ही हूं।' हृदयमें जैनधर्मकी दृढ़ श्रद्धाको लिये हुये स्वामीजी मणुवक हल्लीसे चलकर कांची पहुंच गये। सच है, आचरणसे भ्रष्ट हुआ मनुष्य भ्रष्ट नहीं होता-वह अवश्य ही सम्यग्दर्शनकी महिमासे सिद्धपदको पालेता है, किंतु सम्यग्दर्शनसे भ्रष्ट हुए व्यक्तिके लिये कहीं भी ठिकाना नहीं है। वही वस्तुतः भ्रष्ट है और उसका अनंत संसार है। धर्मके लिये स्वामीका यह त्याग वास्तवमें चरमसीमाका था।

(१०) कांचीमें उस समय शिवकोटि नामक राजा राज्य करता था। 'भीमलिंग' नामका उसका एक शिवालय था। समंतभद्रजी इसी शिवालयमें पहुंचे और उन्होंने राजाको आशीर्वाद दिया तथा वह बोले-"राजन्! मैं तुम्हारे नैवेद्यको शिवार्पण करूंगा।" राजा यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। सवा मनका प्रसाद शिवार्पणके लिये आया। समंतभद्र उस भोजनके साथ अकेले मंदिरमें रह गये और उन्होंने सानंद अपनी जठराग्निको शांत किया। उपरांत दरवाजा खोल दिया। संपूर्ण भोजनकी समाप्तिको देखकर राजाको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वह बड़ी भक्तिसे और भी अच्छे भोजन शिवार्पणके लिये भेजने लगा। किंतु अब स्वामीकी जठराग्नि

शांत हो चुकी थी, इसलिये भोजन उत्तरोत्तर अधिक परिमाणमें बचने लगा। समंतभद्रने साधारणतया इस शेषान्नको देव प्रसाद बतलाया; किंतु राजाको उससे संतोष न हुआ। अगले दिन राजाने शिवालयको सेनासे घेर लिया और दरवाजा खोल देनेकी आज्ञा दी। दरवाजा खुलनेकी आवाज सुनकर समंतभद्रको भावी उपसर्गका निश्चय होगया। उन्होंने उपसर्गकी निवृत्ति पर्यंत अन्न जलका त्याग कर दिया और वे शांतचित्तसे श्री चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी स्तुति करनेमें लीन होगये। स्तुति करते हुये समन्तभद्रजीने जब आठवें तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभस्वामीकी स्तुति करके भीमलिंगकी ओर दृष्टि की तो उन्हें उस स्थानपर किसी दिव्यशक्तिके प्रतापसे चन्द्रलांछन युक्त अर्हंत भगवानका एक जाज्वल्यमान सुवर्णमय विशुद्ध बिंब प्रगट होता दिखलाई दिया। इतनेमें किवाड भी खुल गये थे। राजा भी इस चमत्कारको देखकर दंग रह गया और वह अपने छोटे भाई शिवायन सहित समंतभद्रके चरणोंमें गिर पड़ा। जब स्वामीजी २४ भगवानोंकी स्तुति पूरी कर चुके, तब उन्होंने उनको आशीर्वाद देकर धर्मोपदेश दिया। राजा उसे सुनकर प्रतिबुद्ध होगया और अपने पुत्र 'श्रीकण्ठ' को राज्य देकर 'शिवायन' सहित दिगम्बर जैन मुनि होगया। राजाके साथ और भी बहुतसे लोग जैनधर्मकी शरणमें आए। यही शिवकोटि मुनि मुनि उपरांत एक बड़े आचार्य हुये और इनका रचा हुआ साहित्य भी उपलब्ध है। धन्य हैं स्वामी समन्तभद्र, जिन्होंने आपत्कालमें भी जैनधर्मकी अपूर्व प्रभावना की और अजैन भव्योंको जैनधर्ममें दीक्षित किया।

(११) इस प्रकार स्वामीजीका आपत्काल शीघ्र नष्ट होगया और देहके स्वस्थ्य होजानेपर उन्होंने फिरसे जिनदीक्षा धारण कर ली। वह फिर घोर तपश्चरण और यम-नियम करने लगे। उन्होंने शीघ्र ही ज्ञान-ध्यानमें अपार शक्ति संचय कर ली। अब वे आचार्य होगये और लोग उन्हें जिन शासनका प्रणेता कहने लगे। वे 'गणतो गणीशः' अर्थात् गणियों यानी आचार्योंके ईश्वर (स्वामी) रूपमें प्रसिद्ध होगए।

(१२) स्वामीजी जैनधर्म और जैनसिद्धांतके अगाध मर्मज्ञ थे। इसके सिवाय वह तर्क, व्याकरण, छन्द, अलंकार और काव्य-कोषादि विषयोंमें पूरी तौरसे निष्णात थे। जैन न्यायके तो वह स्वामी थे और उन्हें 'न्याय तीर्थंकर' कहना उचित है। सचमुच स्वामीजीकी अलौकिक प्रतिभाने तात्कालिक ज्ञान और विज्ञानके प्रायः सब ही विषयोंपर अपना अधिकार जमा लिया था। यद्यपि वह संस्कृत, प्राकृत, कनड़ी और तामिल आदि कई भाषाओंके पारंगत विद्वान थे, परन्तु संस्कृतका उनको विशेष अनुराग था। दक्षिण भारतमें उच्चकोटिके संस्कृत ज्ञानके प्रोत्तेजन, प्रोत्साहन और प्रसारणमें उनका नाम खास तौरसे लिया जाता है। स्वामीजीके समयसे संस्कृत साहित्यके इतिहासमें एक खास युगका प्रारम्भ होता है और इसीसे संस्कृत साहित्यमें उनका नाम अमर है। सचमुच स्वामीजीकी विद्याके आलोकमें एक बार सारा भारतवर्ष आलोकित होचुका है। देशमें जिससमय बौद्धादिकोंका प्रबल आतंक छाया हुआ था और लोग उनके नैरात्म्यवाद, शून्यवाद, क्षणिकवादादि सिद्धांतसे संत्रस्त थे—

बना रहे थे, अथवा उन एकांत गर्तोंमें पड़कर अपना आत्मपतन करनेके लिये विवश होरहे थे, उस समय दक्षिण भारतमें उदय होकर स्वामीजीने जो लोकसेवा की है वह बड़े ही महत्वकी तथा चिरस्मरणीय है और इसलिए श्री शुभचंद्राचार्यने जो आपको 'भारत-भूषण' लिखा है वह बहुत ही युक्तियुक्त जान पड़ता है।

(१३) समन्तभद्राचार्यजीकी लोकसेवाका कार्य केवल दक्षिण भारतमें ही सीमित नहीं रहा था। उनकी वादशक्ति अप्रतिहत थी और उन्होंने कई बार नंगे बदन देशके इस छोरसे उस छोर तक घूमकर मिथ्यावादियोंका गर्व खण्डित किया था। स्वामीजी महान योगी थे। कहते हैं कि उनको योगबलके प्रतापसे 'चारणऋद्धि' प्राप्त थी, जिसके कारण वे अन्य जीवोंको बाधा पहुंचाये बिना ही सैकड़ों कोसोंकी यात्रा शीघ्र कर लेते थे। इस कारण समंतभद्र भारतके पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर प्रायः सभी देशोंमें एक अप्रतिद्वंदि सिंहकी तरह क्रीडा करते हुए निर्भयताके साथ वादके लिये घूमे थे। एक बार वह घूमते हुए 'करहाटक' नगरमें भी पहुंचे थे। जिसे कुछ विद्वानोंने सतारा जिलेका आधुनिक 'कराड' और कुछने दक्षिण महाराष्ट्र देशका 'कोल्हापुर' नगर बतलाया है। और जो इस समय बहुतसे भटों (वीर योद्धाओं) से युक्त था। विद्याका उत्कृष्ट स्थान था और जनाकीर्ण था। उस वक्त उन्होंने वहांके राजापर अपने वाद प्रयोजनको प्रकट करते हुए, उन्हें अपना तद्विषयक जो परिचय एक पद्यमें दिया था, वह श्रवणबेलगोलके ५४ वें शिलालेखमें निम्नप्रकारसे संग्रहीत है:—

पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता,
पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये कांचीपुरी वैदिशे।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटं विद्योत्कटं संकटं,
वादार्थी विचराम्यहं नरपते शार्दूलविक्रीडितं॥

'इस पद्यमें दिये हुए आत्म-परिचयसे यह मालूम होता है कि 'करहाटक' पहुंचनेसे पहले समंतभद्रने जिन देशों तथा नगरोंमें वादके लिए विहार किया था, उनमें पाटलीपुत्र नगर, मालव, सिन्धु तथा टक्क (पंजाब) कांचीपुर और वैदिश (भिलसा), ये प्रधान देश तथा जनपद थे, जहां उन्होंने वादकी भेरी बजाई थी और जहांपर किसीने भी उनका विरोध नहीं किया था।

(१४) समंतभद्रजीकी इस सफलताका सारा रहस्य उनके अन्तःकरणकी शुद्धता, चारित्रकी निर्मलता और उनकी वाणीके महत्वमें सन्निहित है। स्वामीजीने राजसी भोगोपभोग और ऐश्वर्यको लात मारकर निर्ग्रन्थ साधुका पद ग्रहण किया था। फिर भला उनके हृदयमें अहंकारकी नीच भावना कैसे स्थान पासक्ती थी? उनकी वाक्गिरा लोकहितके लिए होती थी। इसी लिए वह सर्वमान्य थे। सच पूछिये तो स्वात्महित साधनके साथ २ दूसरेका हितसाधन करना ही स्वामीजीका प्रधान कार्य था और बड़ी योग्यताके साथ उन्होंने इसका संपादन किया था। ऐसे महान् आत्मविजयी वीरपर भारतवासी जितना गर्व करें थोड़ा है!

(१५) स्वामीजीने लोकहित कार्यके साथ२ जो श्रेष्ठ साहित्य-रचना की थी, उसमेंके कुछ रत्न अब भी मिलते हैं। मुख्यतः वे

इसप्रकार हैं:—१—आप्तमीमांसा, २—युक्त्यनुशासन, ३—स्वयंभूस्तोत्र, ४—जिनस्तुतिशतक ५—रत्नकरण्डक उपासकाध्ययन, ६—जीवसिद्धि, ७—तत्त्वानुशासन, ८—प्राकृत व्याकरण, ९—प्रमाणपदार्थ, १०—कर्मप्राभृत टीका और ११—गंधहस्तिमहाभाष्य। यह महाभाष्य आज दुर्लभ है, फिर भी इन ग्रन्थरत्नोंसे स्वामीजीकी अमरकीर्ति संसारमें चिरस्थायी है।

(१६) स्वामीजीके प्रारम्भिक जीवनकी तरह ही उनका अंतिम जीवन भी अंधकारके पर्देमें छिपा हुआ है। हां, यह स्पष्ट है कि उनका अस्तित्व समय शक सं० ६० (ई० सन् १३८) था और वह एक बड़े योगी और महात्मा थे। उनके द्वारा धर्म, देश तथा समाजकी सेवा विशेष हुई थी।

पाठ २८।

श्री नेमिचंद्राचार्य और वीरशिरोमणि वीरमार्तंड चामुंडराय।

(१) दक्षिण भारतके जैन इतिहासमें आचार्य प्रवर श्री नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ती और वीरशिरोमणि चामुण्डरायके नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित हैं। इन दोनों महानुभावोंका पारस्परिक संबंध भी घनिष्ट है। सच पूछिये तो श्री नेमिचन्द्र रूपी विद्यावारिधिसे यह चामुण्डराय सदृश विद्यारत्न उत्पन्न हुआ है।

(२) चामुण्डरायके जमानेमें महीशूर (Mysore) देश

'गंगवाड़ी' नामसे प्रसिद्ध था और वहां ईस्वी दूसरी शताब्दीसे जैनधर्म प्रतिपालक गंगवंशी क्षत्रिय वीरोंका राज्याधिकार था। गंग वंशमें मारसिंह द्वितीय नामके एक राजा ईस्वी दसवीं शताब्दीमें हुए। चामुण्डराय इन्हींके सेनापति और राजमंत्री थे। इनके राज्यकालमें गङ्गसेनाने चेर, चोल, पांड्य और नोलम्बादि देशके पल्लव राजाओंसे रणांगणमें लोहा लिया था और विजयश्री उसके भाग्यमें रही थी। आखिर सन् ९७५ ई० में मारसिंहने आचार्य श्री अजितसेनके निकट बङ्कापुरमें समाधिमरण किया था। उपरांत राजमल्ल द्वितीयने गंग वंशके राजसिंहासनको सुशोभित किया था और इनके बाद राक्षस गंग राज्याधिकारी हुए थे। चामुण्डरायने इन दोनों राजाओंकी कीर्तिगरिमाको अपनी अमूल्य सेवाओं द्वारा सुरक्षित रक्खा था।

(३) यह दीर्घायु और भाग्यशाली चामुण्डराय ब्रह्म-क्षत्र-वंशके रत्न थे। उनके माता पिता कौन थे और उनका जन्म कहां और किस तिथिको हुआ था, दुर्भाग्यसे इन बातोंका पता इसी तरह नहीं चलता जिसतरह श्री नेमिचन्द्राचार्यके प्रारम्भिक जीवनका कुछ भी वृतांत नहीं मिलता! हां, यह स्पष्ट है कि चामुण्डरायका अधिक समय गंगोंकी राजधानी तलकाडमें व्यतीत हुआ था।

(४) चामुण्डरायकी माताका नाम कालळदेवी था और वह जैन धर्मकी दृढ़ श्रद्धालु थीं। श्री चामुण्डरायने धर्म प्रतीति उन्हींसे ग्रहण की थी। अच्छे बुरेको समझते ही चामुण्डरायने श्री

अजितसेन स्वामीसे श्रावकके व्रत स्वीकार किए थे। और वह परम सम्यक्त्वी श्रावक होगये थे। आचार्य आर्यसेनके निकट उन्होंने शस्त्र और शास्त्रज्ञानको ग्रहण किया था। किन्तु उनके जीवन-सांचेको ठीक ठीक ढालनेवाले महानुभाव श्री नेमिचन्द्राचार्य ही थे। चामुण्डरायको अध्यात्म-ज्ञान इन्हींसे प्राप्त हुआ था। स्वयं आचार्य नेमिचन्द्रजी कहते हैं:—

सिद्धन्तुदयतडुग्गयणिम्मलवरणेमिचन्द्रकरकलिया।
गुणरयणभूसणंबुहिमइवेला भरउ भुवणयलं॥ ९६७॥

अर्थात्—उनकी वचनरूपी किरणोंसे गुण रूपी रत्नोंसे शोभित चामुण्डरायका यश जगतमें विस्तारित हो। इन बातोंसे यह स्पष्ट है कि चामुण्डरायने नियमितरूपमे ब्रह्मचर्याश्रममें विद्या और कलाका अध्ययन करके युवावस्थाको प्राप्त किया था और तब वह एक सफल गृहस्थ बने थे। उनका विवाह अजितादेवी नामक रमणीरत्नसे हुआ था। इन्हीं देवीसे जिनदेवन् नामक एक धर्मात्मा और सज्जन पुत्र उन्हें नसीब हुआ था।

(५) गृहस्थाश्रममें प्रवेश करके चामुण्डराय एक धर्मात्मा और वीर नागरिक बन गये थे। उनकी योग्यताने उन्हें गङ्गराजाओंके महामंत्री और सेनापति जैसे उच्चपदपर प्रतिष्ठित किया था। दूसरे शब्दोंमें कहें तो उस समय महीशूर देशके भाग्यविधाता चामुण्डराय थे। मालूम होता है उनकी इस श्रेष्ठताको लक्ष्य करके ही विद्वानोंने उन्हें "ब्रह्मक्षत्र-कुल-भानु"—"ब्रह्मक्षत्र—कुलमणि" आदि

विशेषणोंसे स्मरण किया है। शासनाधिकार जैसे महत्वर पदपर पहुंचकर भी उन्होंने नैतिक आचारणका कभी भी उल्लंघन नहीं किया, तब भी उनके निकट ' परदारेषु मातृवत् और परद्रव्येषु लोष्टवत् " की उक्ति महत्वशाली होरही थी। अपने ऐसे ही गुणोंके कारण वह शौचाभरण कहे गये हैं। साथ ही खूबी यह है कि अपनी सत्य-निष्ठाके लिये वह इस कलिकालमें 'सत्य युधिष्ठिर' कहलाते थे। वैसे उनके वैयक्तिक नाम 'चामुण्डराय' 'राय' और 'गोम्मटदेव' थे, किंतु अपने वीरोचित गुणोंके कारण वह ' वीर मार्तण्ड ' आदि नामोंसे भी प्रख्यात थे। उनके पूर्वभवके सम्बन्धमें कहा गया है कि ' कृतयुग ' में वह ' सम्मुख ' के समान थे त्रेत युगमें ' राम ' के सदृश और कलियुगमें ' वीर मार्तण्ड ' हैं। इन बातोंसे उनके महान् व्यक्तित्वका सहज ही अनुमान लगाया जासक्ता है।

(६) श्री चामुण्डरायके प्रारम्भिक जीवनके विषयमें थोड़ा बहुत वर्णन मिलता है किन्तु उनके गुरु श्री नेमीचन्द्राचार्यके सम्बन्धमें कुछ भी ज्ञात नहीं होता। उनके माता-पिता कौन थे? उनका जन्म स्थान क्या था? उन्होंने कहां किससे जिनदीक्षा ग्रहण की, यह कुछ भी मालूम नहीं होता। हां, उनके साधुजीवनकी जो घटनायें मिलती हैं उनसे उनका एक महान पुरुष होना सिद्ध है। वह मूलसंघ और देशीगणके आचार्य थे। ' गोम्मटसार' में इन्होंने श्री अभयनंदि, श्री इन्द्रनंदि, श्री वीरनंदि और श्री कनकनंदिको गुरुवत् स्मरण किया है; किन्तु उनके खास गुरु कौन थे, यह नहीं कहा जासक्ता।

(७) चामुण्डरायजीका श्री नेमिचंद्राचार्यसे घनिष्ट सम्पर्क था। जिनके घरमें आचार्य महाराजकी विशेष मान्यता थी। एक रोज आचार्य महाराजने पौदनपुरके श्री गोम्मटेश्वरकी विशाल मूर्तिका वर्णन किया। उसका हाल चामुण्डरायकी माता पहलेसे सुन चुकी थी। उन्होंने निश्चय किया कि उस पावन-तीर्थकी यात्रा अवश्य करूँगी। तदनुसार चामुण्डरायने यात्रा-संघ ले चलनेका प्रबन्ध किया। आचार्य नेमिचन्द्र भी उसके साथ चले। जिस समय यह संघ श्रवणबेलगोलके निकट आकर पड़ा, तो वहां मालूम हुआ कि पौदनपुरकी यात्रा सुगम नहीं है। वहांका मार्ग कुक्कुट-सर्पाच्छन्न हो रहा है।

(८) धर्मवत्सल चामुण्डरायकी माता इन दुःखद समाचारोंको सुनकर खिन्नमना हुईं; किन्तु श्री नेमिचन्द्राचार्यका योग तेज उनको ढाढस बंधानेमें सफल हुआ। नेमिचन्द्रजीको श्री पद्मावती-देवीने आकर बताया कि जहां संघ ठहरा हुआ है, वहीं निकटकी पहाड़ीपर रामरावणसे पूजी हुई एक प्राचीन विशालकाय बाहुबलि-जीकी मूर्ति उकेरी हुई है। लोग उसे भूले हुये हैं। उसका उद्धार कराकर चामुण्डरायजीकी माताकी मनोकामना सिद्ध कराइये। श्री नेमिचन्द्राचार्यजीने उस दिन अपनी धर्म-देशनामें इस सत्यका उद्घाटन कर दिया। सारे संघके सदस्य यह हर्ष समाचार सुनकर प्रसन्न हो गए। चामुण्डरायने अपनी माताकी संतुष्टिके लिए उस पर्वतपर स्थित प्राचीन मूर्तिका उद्धार करना प्रारम्भ करा दिया। ठीक समयपर एक विशालकाय मूर्ति वहां बनकर तैयार होगई।

(९) आचार्य महाराजने शुभ तिथि और वारको उसका प्रतिष्ठा-अनुष्ठान महोत्सव करानेका आदेश किया। श्री० अजित सेनाचार्य प्रतिष्ठा कार्यको सम्पन्न करनेको बुलाये गये। बड़ा भारी धर्मोत्सव हुआ। चामुण्डरायने अपने जीवनको सफल बना लिया। यह चैत्र शुक्ल पंचमी इतवार ता० १३ मार्च सन् ९८१ ई०की सुखद घटना है। इसी रोज श्रवणबेलगोलकी लगभग ५८ फीट ऊंची विशाल काय गोम्मट मूर्तिका उद्घाटन हुआ था; जो आज भी संसारमें चामुण्डरायके अमर नामकी कीर्ति फैला रही है और संसारकी अद्भुत वस्तुओंमें एक है।

(१०) श्री गोम्मटेश्वरकी मूर्तिस्थापनाके कारण चामुण्डराय 'राय' नामसे प्रसिद्ध हुये और उन्होंने श्री नेमिचन्द्राचार्यजीकी पाद पूजा करके इस मूर्तिकी रक्षा और पूजाके लिये कई गांव उनको भेट कर दिये। सचमुच चामुण्डरायकी यह मूर्तिस्थापना बड़े महत्वकी है। जैनधर्म विश्वकी सम्पत्ति है। जिनदेवका अवतरण प्राणीमात्रके हितके लिये होता है। उनकी पूजा अर्चना करनेका अधिकार जीवमात्रको है। श्री चामुण्डराय इन बातोंको अच्छी तरह जानते थे। उनकी यह मूर्तिस्थापना जैनधर्मके इस विशाल रूपको स्पष्ट प्रगट कर रही है। आज श्रवणबेलगोलके पवित्र जिनमंदिरोंके और खास कर गोम्मटेश्वरके दर्शन करनेके लिए जैनी अजैनी, भारतवासी और विदेशी सब ही आते हैं और दर्शन करके अपनेको कृतकृत्य हुआ समझते हैं। वास्तवमें पुनीत धर्म-भावके साथ श्रवणबेलगोलके पुरातत्वकी शिल्पकला भी एक दर्शनीय वस्तु है। यह सोनेमें सुगंधि
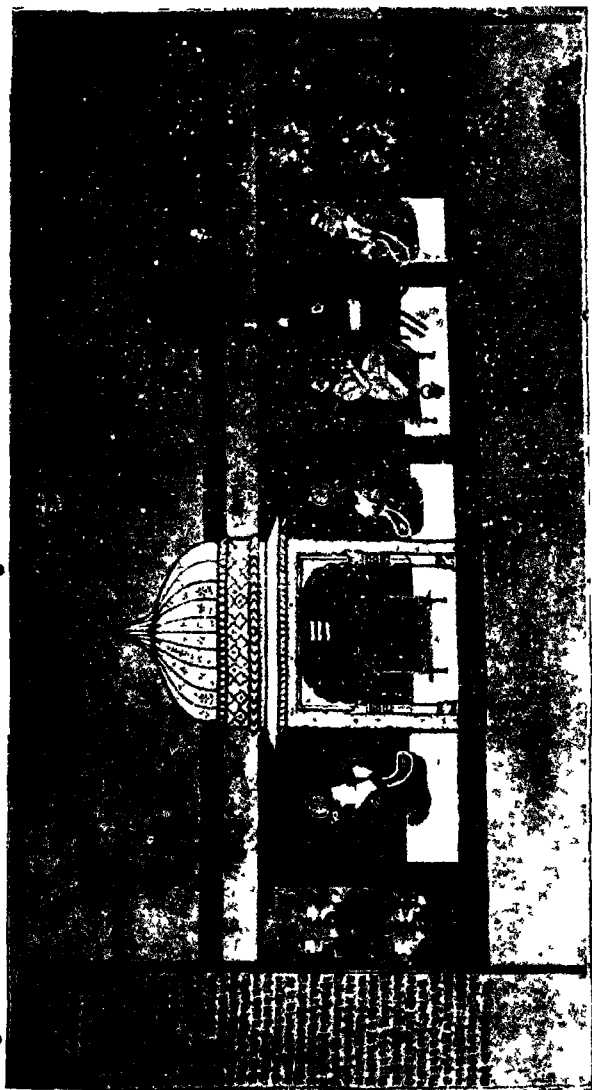
श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ति और वीर-मार्तंड चामुंडरायजी।

श्री चामुण्डराय और आचार्य नेमिचन्द्रजीकी अपूर्व सूझकी सूचक है।

(११) आचार्य महोदय उनके धर्मकार्योंका वर्णन इस प्रकार करते हैं—

गोम्मटसंगहसुत्तं गोम्मटसिहरुवरि गोम्मटजिणो य।
गोम्मटरावविणिम्मियदक्खिण कुक्कडजिणो जयउ ॥१६८॥

अर्थ—'गोमटसार संग्रहरूप सूत्र' गोम्मट शिखरके ऊपर चामुंडराय राजाके बनवाये हुए जिनमंदिरमें विराजमान एक हाथ प्रमाण इन्द्रनीलमणिमय नेमिनाथ तीर्थंकरदेवका प्रतिबिंब तथा उसी चामुंडराय द्वारा निर्मापित लोकमें रूढ़िसे प्रसिद्ध दक्षिण कुक्कुट नामक प्रतिबिंब जयवन्त प्रवर्तो।'

'जेण विणिम्मियपडिमावयणं सव्वट्ठसिद्धिदेवेहिं।
सव्वपरमोहिजोगिहिं दिट्ठं सो गोम्मटो जयउ ॥ १६९ ॥

अर्थ—' जिस रायने बनवाई उस जिन प्रतिमाका मुख सर्वार्थसिद्धिके देवोंने तथा सर्वावधिके धारक योगीश्वरोंने देखा है ' वह चामुंडराय सर्वोत्कृष्टपने प्रवर्तो।'

'वज्जयणं जिणभवणं ईसिपभारं सुवण्णकलसं तु।
तिहुवणपडिमाणिक्कं जेण कयं जयउ सो राओ ॥१७०॥

अर्थ—जिसका अवनितल वज्र सरीखा है, जिसका ईषत्प्राग्भार नाम है, जिसके ऊपर सुवर्णमई कलश है, तथा तीन लोकमें उपमा देने योग्य ऐसा अद्वितीय जिनमंदिर जिसने बनवाया वह चामुण्डराय जयवंत होवो।

'जेणुब्भियथंभुवरिमजक्खतिरीटग्गकिरणजलधोया ।
सिद्धाण सुद्धपाया सो राओ गोम्मटो जयउ ॥ ९७१ ॥

अर्थ–जिसने चैत्यालयमें खड़े किए हुए खंभोंके ऊपर स्थित जो यक्षके आकार हैं, उनके मुकुटके आगेके भागकी किरणों रूप जलसे सिद्ध परमेष्ठियोंके आत्मप्रदेशोंके आकार रूप शुद्ध चरण धोये हैं, ऐसा चामुण्डराय जयको पाओ ।'

(१२) इसप्रकार श्रवणबेलगोलको चामुंडरायने विपुल धन-राशि व्यय करके दर्शनीय स्थान बना दिया था । अपने इन धार्मिक कृत्योंके कारण ही चामुण्डराय जनसाधारणको प्रिय और धर्मप्रभावक थे । किन्तु उनके निमित्तसे संपन्न हुआ एक अन्य महत्वशाली कार्य विशेष उल्लेखनीय है । वह है श्री नेमिचन्द्राचार्य द्वारा उनके लिए "गोम्मटसार" सिद्धांतग्रन्थका रचा जाना । जैन दर्शनके लिये यह अमूल्य रत्न-पिटक है । इसके अतिरिक्त श्री नेमिचन्द्राचार्यने और भी कई ग्रन्थोंका प्रणयन किया था; जिनमें उल्लेखनीय यह हैं—

(१) द्रव्यसंग्रह, (२) लब्धिसार, (३) क्षपणासार, (४) त्रिलोकसार, (५) प्रतिष्ठापाठ (?)

(१२) अपने गुरुके अनुरूप चामुण्डराय भी एक आशु ग्रन्थकार थे । उन्होंने संस्कृत प्राकृत और कनड़ी भाषा द्वारा कविता-कामिनीकी उपासना की थी । किन्तु उनकी रचनाओंमें अब मात्र दो ही उपलब्ध हैं, (१) चारित्रसार और (२) त्रिषष्टिलक्षण पुराण । पहला संस्कृत भाषामें आचार ग्रन्थ है और दूसरा कनड़ी भाषाका पुराणग्रन्थ है, जो बेंगलोरसे छप चुका है । कहते हैं कि

चामुण्डरायने "गोम्मटसार" पर एक कन्नडी टीका भी रची थी। सारांशतः श्री नेमिचन्द्राचार्य और श्री चामुण्डरायने धर्मप्रभावनाके लिये कुछ उठा न रक्खा था!

(१४) किन्तु चामुण्डरायके जीवनका दूसरा पहलू और भी अनूठा है। परमार्थका साधन करते हुये उन्होंने लोकसम्बंधी कार्योंको भुला नहीं दिया था। वह पक्के कर्मवीर थे। गङ्गराज्यकी श्री-वृद्धि उनके बाहुबलकी साक्षी दे रही है। एक व्रती श्रावक होते हुए भी उन्होंने सेनापतिके पदसे बड़े २ युद्धोंका संचालन किया था। अपनी जननी जन्मभूमिके लिये वह दीवाने थे। उसकी मानरक्षा और यशविस्तारके लिए उनका तेगा हरसमय म्यानके बाहर रहता था। उनसे धर्मसूरके लिये यह कोई अनोखी बात नहीं है; क्योंकि जैन अहिंसा किसी भी व्यक्तिके राष्ट्रधर्ममें बाधक नहीं है। जैन धर्म कहता है, 'पहले कर्मशूर बन जाओ तभी तुम धर्मशूर बन सकोगे।' चामुण्डरायके महान् व्यक्तित्वमें वह आदर्श जीताजागता दिखाई पड़ रहा है।

(१५) चामुण्डरायने अपने शत्रुओंको अनेकबार परास्त किया जरूर, किन्तु अकारण, मात्र द्वेषवश उनके प्राणोंको अपहरण नहीं किया। भाग्यवशात् रणक्षेत्रमें कोई कालकवलित होगया तो वह दूसरी बात है। अत्याचारका निराकरण करनेके लिये चामुण्डरायने गङ्गसैन्यको रणाङ्गणमें वीरोचित मार्ग सुझाया था। कहा गया है कि खेड़गकी लड़ाईमें अत्याचारी विज्जलको हराकर चामुण्डरायने 'समरधुरंधर' की उपाधि प्राप्त की थी। नोलम्ब णमें

गोनूरके मैदानके बीच उन्होंने जो रण शौर्य प्रकट किया उसके कारण वह 'वीर मार्तण्ड' कहलाये। उच्छंगिके किलेको जीतकर वह 'रणरंगसिंह' होगये और बागलूरके गोविंदराजको उसका अधिकारी बना दिया। इसलिए वह 'वैरीकुलकालदण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुए। कामराजके गढ़में उन्होंने जो विजय पाई, उसके उपलक्षमें वह भुजविक्रम कहलाये। नागवर्माको उसके द्वेषका उचित दण्ड देनेके कारण वह 'छलदङ्कगङ्ग' विरुदसे विभूषित किये गये थे। गङ्गभट मुडु राचय्यको तलवारके घाट उतारनेके उपलक्षमें वह 'समरपरशुराम' और 'प्रतिपक्ष राक्षस' उपाधियोंसे विभूषित हुए थे। भटवीरके किलेका नाश करके वह 'भट मारि' नामसे प्रसिद्ध हुए थे। और चूंकि वह वीरोचित गुणोंको धारण करनेमें शक्य थे एवं सुभटोंमें महान् वीर थे, इसलिए वह क्रमशः 'गुणवम् काव' और 'सुभटचूड़ामणि' कहलाते थे। चामुण्डरायकी यह विरुदावली उनके विक्रम और शौर्यको प्रकट करती है। सच-मुच वह 'वीर शिरोमणि' थे।

(१६) चामुण्डराय महान योद्धा और सेनापति ही नहीं बल्कि राजमंत्री और उत्कृष्ट राजनीतिज्ञ भी थे। राजमंत्रीके पदसे उन्होंने किस ढङ्गसे गङ्ग राज्यकी शासन व्यवस्था की थी, उसको बतानेवाले यद्यपि पर्याप्त साधन उपलब्ध नहीं हैं; किंतु यह प्रगट है कि उनके मंत्रित्व कालमें देशमें विद्या, कला, शिल्प और व्यापारकी अच्छी उन्नति हुई थी। गङ्ग-राष्ट्रके लोगोंकी अभिवृद्धि विशेष होना चामुण्डरायके शासनकी सफलता और सुचारुताका प्रत्यक्ष प्रमाण

है। इस कालके बने हुए सुन्दर मन्दिर, भव्य मूर्तियां, विशाल सरोवर और उन्नत राजप्रासाद आज भी दर्शकोंके मन मोहलेते हैं।

(१७) गङ्ग राष्ट्रकी उस समय अपने पड़ोसी राजाओंके प्रति जो नीति थी, उससे चामुण्डरायकी गहन राजनीतिका पता चलता है। उस समय राष्ट्रकूट राजाओंकी चलती थी। चामुण्डरायने गङ्ग राजाओंसे उनकी मैत्री करा दी; बल्कि उनके लिये बड़ी लड़ाइयां लड़कर उन्हें गङ्गवंशका चिर ऋणी बना दिया। इस प्रकार युग-प्रधान राठौर राजाओंसे निश्चिन्त होकर उन्होंने गङ्ग राज्यकी भी वृद्धि की थी।

(१८) मंत्रीप्रवर चामुण्डरायके शासनकालमें जिस प्रकार गंगवाड़ि देशकी अभिवृद्धि धन संपदा और कलाकौशलके द्वारा हुई थी, वैसे ही साहित्यकी उन्नति भी खूब हुई थी। सच पूछिये तो साहित्योन्नतिके बिना देशोन्नति हो ही नहीं सक्ती। चामुण्डराय इस सत्यको अच्छी तरह जानते थे। उन्होंने स्वयं साहित्य रचनाका महत्तर कार्य अपने सुयोग्य हाथोंसे सम्पन्न किया था। और तो और, युद्धक्षेत्रकी किन्हीं शांत घड़ियोंमें भी वह साहित्यको नहीं भूले थे। कनड़ी चामुण्डरायपुराण युद्ध क्षेत्रमें ही उन्होंने रचा था। गंगवा-ड़ियोंमें कनड़ी भाषाकी ही प्रधानता थी और तब उसकी उन्नति भी खूब हुई। गंगराजाओं और चामुण्डरायने श्रेष्ठ कवियोंको अपनाकर उन्हें खासा प्रोत्साहन दिया। इनमें आदिपम्प, पोन्न, रण्ण और नागवर्म्म उल्लेखनीय हैं। कनड़ी साहित्यके साथ ही उस-समय संस्कृत और प्राकृत साहित्यकी भी उन्नति यहां हुई थी।

आचार्य प्रवर अजितसेन, श्री नेमिचंद्रजी सिद्धांतचक्रवर्ती, माधवचंद्र त्रैवेद्य प्रभृति उद्भट विद्वानोंने अपनी अमूल्य रचनाओंसे इन भाषाओंके साहित्यको उन्नत बनाया था। इस साहित्योन्नतिसे भी चामुण्डरायके सर्वांग पूर्ण राजतंत्र व्यवस्थाका समर्थन होता है।

(१९) श्री नेमिचन्द्राचार्यसे उनका घनिष्ट सम्बन्ध था, यह पहले ही बताया जाचुका है। सचमुच जिस प्रकार राजप्रबंध और देशरक्षाके कार्यमें चामुण्डराय प्रसिद्ध थे, उसी प्रकार श्री नेमिचन्द्रचार्य धर्मोन्नति और शासक रक्षाके कार्यमें अद्वितीय थे। उस समय वह जैन धर्मके स्तंभ थे! जैनदर्शनका मर्मज्ञ उनसा और कोई नहीं था। विद्वानोंने उन्हें 'सिद्धांतचक्रवर्ती' स्वीकार किया था। उनकी कीर्तिगरिमाके सम्बन्धमें कविका निम्न पद्य दृष्टव्य है—

"सिद्धांताम्भोधिचन्द्रः प्रणुतपरमदेशीगणाम्भोधिचन्द्रः।
स्याद्वादाम्भोधिचन्द्रः प्रकटितनयनिक्षेपवाराशिचन्द्रः॥
एनश्चक्रौघचन्द्रः पदनुतकमलव्रातचन्द्रः प्रशस्तो।
जीयाज्ज्ञानाब्धिचन्द्रो मुनिपकुलवियच्चन्द्रमा नेमिचन्द्रः॥"

(२०) सच पूछिये तो भारतीय इतिहास इन दोनों नर-रत्नोंके प्रकाशसे प्रदीप्त होरहा है। भारतीय साधु सम्प्रदायमें श्री नेमिचन्द्रजीका नाम प्रमुख पंक्तिमें स्थान पानेके योग्य है और चामुंडराय? वह तो भारतीय वीरोंमें अग्रणी और श्रावक संघके मुकुट हैं। उनके जनहितके कार्य और सम्यग्दर्शनकी निर्मलता उन्हें ठीक ही 'सम्यक्त रत्नाकर' प्रगट करती है। वह एक ऊंचे दर्जेके धर्मात्मा, महान् योद्धा, प्रतिभाशाली कवि, परमोदार दातार और सत्य युधिष्ठर थे।

पाठ २९।

श्रीमद्भट्टाकलङ्क देव।

'श्रीमद्भट्टाकलङ्कस्य पातु पुण्या सरस्वती।
अनेकांतमरुन्मार्गे चन्द्रलेखायितं यया ॥—ज्ञानार्णव।

(१) दिगम्बर जैन सम्प्रदायमें समन्तभद्रस्वामीके बाद जितने नैयायिक और दार्शनिक विद्वान हुए हैं, उनमें अकलङ्क-देवका नाम सबसे पहले लिया जाता है। उनका महत्व केवल उनकी ग्रन्थ रचनाओंके कारण ही नहीं है, उनके अवतारने जैन धर्मकी तात्कालिक दशापर भी बहुत बड़ा प्रभाव डाला था। वे अपने समयके दिग्विजयी विद्वान् थे। जैनधर्मके अनुयायियोंमें उन्होंने एक नया जीवन डाल दिया था। यह उन्हींके जीवनका प्रभाव था जो उनके बाद ही कर्नाटक प्रांतमें विद्यानंदि, प्रभाचन्द्र, माणिक्यनंदि, वादिसिंह, कुमारसेन जैसे बीसों तार्किक विद्वानोंने जैनधर्मको बौद्धादि प्रबल प्रतिवादियोंके लिए अजेय बना दिया था। उनकी ग्रन्थ-रचयिताके रूपमें जितनी प्रसिद्धि है, उससे कहीं अधिक प्रसिद्धि वाग्मी (वक्ता) या वादीके रूपमें थी। उनकी वक्तृत्व शक्ति या सभामोहिनी शक्तिकी उपमा दी जाती है। महाकवि वादिराजकी प्रशंसामें कहा गया है कि वे सभामोहन करनेमें अकलङ्क देवके समान थे।

(२) प्रसिद्ध विद्वान् होनेके कारण अकलङ्क देव 'भट्टाकलङ्क' के नामसे प्रसिद्ध थे। 'भट्ट' उनकी एक तरहकी पदवी थी।

'कवि' की पदवीसे भी वे विभूषित थे। यह एक आदरणीय पदवी थी जो उस समय प्रसिद्ध और उत्तम लेखकोंको दी जाती थी। लघु समन्तभद्र और विद्यानंदने उनको 'सकलतार्किकचक्र-चूडामणि' विशेषण देकर स्मरण किया है। अकलङ्कचंद्रके नामसे भी उनकी प्रसिद्धि है।

(३) अकलङ्कदेवको कोई जिनदास नामक जैन ब्राह्मण और कोई जिनमती ब्राह्मणिका पुत्र और कोई पुरुषोत्तम मंत्री तथा पद्मावती मंत्रिणीका पुत्र बतलाते हैं; परन्तु ये दोनों ही नाम यथार्थ नहीं हैं। वे वास्तवमें राजपुत्र थे। उनके 'राजवार्तिकालङ्कार' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थके प्रथम अध्यायके अंतमें लिखा है कि वे 'लघुहव्व' नामक राजाके पुत्र थे:—

जीयाच्चिरमकलङ्कब्रह्मा लघुहव्वनृपतिवरतनयः।
अनवरतनिखिलविद्वज्जननुतविद्यः प्रशस्तजनहृद्यः॥

(४) अकलङ्कदेवका जन्म स्थान क्या है, इसका पता नहीं चलता। तो भी मान्यखेटके आसपास उसका होना संभव है। क्योंकि मान्यखेटके राजाओंकी जो शृंखलाबद्ध नामावली मिलती है उसमें लघुहव्व नामक राजाका नाम नहीं है, इसलिये वह उसके आसपासके मांडलिक राजा होंगे। एकबार वे राजा साहसतुंग या शुभतुंगकी राजधानी मान्यखेटमें आये थे। इससे मालूम होता है कि मान्यखेटसे उनका संपर्क विशेष था। कनड़ी 'राजावलीकथे' में अकलङ्कदेवका जन्म स्थान कांची (कांजीवरम्) बतलाया गया है। संभव है कि यह सही हो।

(५) राजपुत्र अकलङ्कदेव जन्मसे ही ब्रह्मचारी थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था। कथाग्रंथोंमें उनके एक भाई निष्कलङ्क और बताये गये हैं। यद्यपि कोई २ विद्वान् उनके होनेमें शंका करते हैं। सो जो हो, कथाग्रन्थमें कहा है कि वे भी उनकी तरह ब्रह्मचारी थे। अकलङ्कदेवके समयमें बौद्धधर्म जैन धर्मके साथ २ चल रहा था और जैनियोंसे उसकी स्पर्द्धा अधिक थी। जगह जगहपर जैनियोंको उससे मुकाबिला लेना पडता था। जैनधर्मका सिक्का जमानेके लिये तब एक बड़े तार्किक विद्वान्‌की आवश्यक्ता थी। अकलङ्कदेवने इस बातका अनुभव कर लिया और उन्होंने अपनेको इस पुनीत कार्यके लिए उत्सर्ग कर दिया।

(६) तब पोनतग* नामक स्थानमें बौद्धोंका एक विशाल महाविद्यालय था। दूर दूरसे बौद्ध विद्यार्थी उसमें पढ़ने आते थे। अकलङ्कदेव भी उसी विद्यालयमें प्रविष्ट होगये। कथाग्रन्थ कहते हैं कि बौद्ध विद्यालयमें प्रविष्ट होनेके लिये उन्हें और उनके भाई निकलङ्कको बौद्ध भेष धारण करना पड़ा था। यह दोनों ही भाई तीक्ष्ण बुद्धि थे। इन्होंने शीघ्र ही न्याय और बौद्ध सिद्धांतका खासा ज्ञान प्राप्त कर लिया। एक बार बौद्धगुरुको इनके बौद्ध होनेमें संदेह हो गया और उसने पता चला लिया कि वास्तवमें यह बौद्ध नहीं जैन हैं। जैन होनेके कारण बौद्धगुरुने उन्हें कैद कर दिया; किंतु अकलङ्क निकलङ्क वहांसे निकल भागे। निकलङ्कने अपने भाई अकलङ्कको जैनधर्म प्रभावनाके लिए सुरक्षित स्थानको भेज

---

* पोनतग वर्तमान 'ट्रिवटूर' स्थानके निकट बताया जाता है।

दिया और वह स्वयं बौद्धोंके कोपभाजन बन गये । धर्मके लिये वह अमर शहीद होगये ।

(७) अकलङ्कदेव संसारके वैचित्र्यको देखकर विरक्तमन होगये । वह सुधापुर (उत्तर कनाराका सोड ग्राम) पहुंचे और वहां जैन संघमें सम्मिलित होगये । उन्होंने जिनदीक्षा ग्रहण करली। विद्या और बुद्धि दोनोंमें वह अद्वितीय थे । यम-नियमके पालनमें भी उन्होंने विशेष संयम और धैर्यका परिचय दिया था और वह शीघ्र ही इस संघके आचार्य होगये थे । यह संघ "देवसंघ देशीयगण"के नामसे प्रसिद्ध था और अकलङ्कदेव तब इसके प्रमुख हुये थे ।

(८) अकलङ्कदेव तब एक बड़े भारी नैयायिक और दार्शनिक विद्वान होगये । उनके व्यक्तित्वसे उस समयके जैन संघमें नवस्फूर्ति आगई । उनकी सबसे अधिक प्रसिद्धि इस विषयमें है कि उन्होंने अपने पांडित्यसे बौद्ध विद्वानोंको पराजित करके जैन धर्मकी प्रतिष्ठा स्थापित की थी । उनका एक बड़ा भारी शास्त्रार्थ राजा हिमशीतलकी सभामें हुआ था । हिमशीतल पल्लव वंशका राजा था । और उसकी राजधानी कांची (कांजीवरम्) में थी । वह बौद्ध था । किंतु उसकी एक रानी जैनी थी । वह धर्म प्रभावना करना चाहती थी । बौद्ध उनके मार्गमें कण्टक बन जाते थे । इसलिये उन्होंने भट्टाकलङ्कदेवको निमंत्रित करके इस शास्त्रार्थकी योजना करा दी । यह शास्त्रार्थ १७ दिनतक हुआ था और इसमें जैनधर्मको बड़ी भारी विजय प्राप्त हुई थी । राजा हिमशीतल स्वयं जैनधर्ममें दीक्षित होगया था और उसकी आज्ञासे

बौद्ध लोग सीलोनके " कढी " नामक नगरको निर्वासित कर दिए गए थे। बौद्धोंके साथ शास्त्रार्थ होनेकी तथा उनके जीतनेकी घटनाका उल्लेख श्रवणबेलगोलकी मल्लिषेण प्रशस्तिमें इस प्रकार किया है:—

तारा येन विनिर्जिता घटकुटीगूढावतारासमं ।
बौद्धैर्यो धृतपीडपीडितकुदृग्देवार्थसेवाञ्जलिः ॥
प्रायश्चित्तमिवांघ्रिवारिजरजः स्नानं च यस्याचर-
द्दोषाणां सुगतः स कस्य विषयो देवाकलङ्कः कृती ॥
यस्येदमात्मनोऽनन्यसामान्यनिरवद्यविभवोपवर्णनमाकर्ण्यते:—
राजन्साहसतुङ्ग सन्ति बहवः श्वेतातपत्रा नृपाः ।
किं तु त्वत्सदृशा रणे विजयिनस्त्यागोन्नता दुर्लभाः ॥
तद्वत्सन्ति बुधा न सन्ति कवयो वादीश्वरा वाग्मिनो ।
नानाशास्त्रविचारचातुरधियः काले कलौ मद्विधाः ॥
राजन्सर्वारिदर्पप्रविदलनपटुस्त्वं यथात्र प्रसिद्ध-
स्तद्वत्ख्यातोऽहमस्यां भुवि निखिलमदोत्पाटने पंडितानां ॥
नोचेदेषोऽहमेते तव सदसि सदा संति संतो महांतो ।
वक्तुं यस्यास्ति शक्तिः स वदतु विदिताशेषशास्त्रो यदि स्यात् ॥
नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं ।
नैरात्म्यं प्रतिपद्य नश्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया ॥
राज्ञः श्री हिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो ।
बौद्धौघान्सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फोटितः ॥

भावार्थ— ' जिसने घडेमें बैठकर गुप्तरूपमें शास्त्रार्थ करनेवाली तारादेवीको बौद्ध विद्वानोंके सहित परास्त किया। और जिसके चरणकमलोंकी रजमें स्नान करके बौद्धोंने अपने दोषोंका प्रायश्चित्त किया, उस महात्मा अकलङ्कदेवकी प्रशंसा कौन कर सक्ता है ? "

" सुनते हैं उन्होंने एकबार अपने अनन्य साधारण गुणोंका इस तरह वर्णन किया था-"

" साहसतुंग (शुभतुंग) नरेश, यद्यपि सफेद छत्रके धारण करनेवाले राजा बहुत हैं, परन्तु तेरे समान रणविजयी और दानी राजा और नहीं। इसी तरह पण्डित तो और भी बहुतसे हैं, परन्तु मेरे समान नाना शास्त्रोंका जाननेवाला पण्डित, कवि, वादीश्वर और वाग्मी इस कलिकालमें और कोई नहीं ! "

' राजन् ! जिस तरह तू अपने शत्रुओंका अभिमान नष्ट करनेमें चतुर है उसी तरह मैं भी पृथ्वीके सारे पण्डितोंका मद उतार देनेमें प्रसिद्ध हूं। यदि ऐसा नहीं है तो तेरी सभामें जो अनेक बड़े विद्वान मौजूद हैं उनमेंसे किसीकी शक्ति हो तो मुझसे वाद करे। "

" मैंने राजा हिमशीतलकी सभामें जो सारे बौद्धोंको हराकर तारादेवीके घड़ेको फोड़ डाला, सो यह काम मैंने कुछ अहंकारके वशवर्ती होकर नहीं किया, मेरा उनसे द्वेष नहीं है; किंतु नैरात्म्य (आत्मा कोई चीज नहीं है) मतके प्रचारसे लोग नष्ट हो रहे थे, उनपर मुझे दया आई और इसके कारण मैंने बौद्धोंको पराजित किया।"

(१०) अकलङ्कदेवके इस वक्तव्यसे उनके हृदयकी विशालता, निर्भीकता और धर्म तथा परोपकारवृत्तिका खासा परिचय मिलता है। वह कितने सरल हैं, जो कहते हैं कि मुझे अभिमान और द्वेष छू नहीं गया है–मैंने जीवोंके कल्याणके लिए ही वादभेरी बजायी है। और उनकी निर्भीकता तो देखिये। निःशङ्क और अकेले राजाओंके दरबारमें वह पहुंचते हैं और विद्वानोंको शास्त्रार्थके लिए चुनौती देते हैं। सचमुच वह नर-शार्दूल थे। जैनधर्मका सिक्का उन्होंने एक बार फिर भारतमें जमा दिया था। वैसे उनके पहलेसे ही वह दक्षिण भारतमें मुख्य स्थान पाये हुये था।

किंतु अकलङ्कदेवने अपने वचन और बुद्धिसे ही धर्मोत्कर्ष नहीं किया था, बल्कि ग्रंथ रचना करके उन्होंने स्थायी रूपमें प्रभावनाको मूर्तिमान बना दिया है। एक समयके नहीं अनेक समयोंके लोग उनकी मूल्यमयी रचनाओंसे लाभ उठाकर आत्म-कल्याण कर सकेंगे। यह उनका कितना महान् उपकार है! उनकी ग्रन्थ रचनायें निम्नप्रकार हैं:—

१. अष्टशती–अकलङ्कदेवका यह सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। समन्तभद्रस्वामीके देवागमका यह भाष्य है।

२. राजवार्तिक–यह उमास्वामिके 'तत्वार्थसूत्र' का भाष्य है। इसकी श्लोकसंख्या १६००० है।

३. न्यायविनिश्चय–न्यायका प्रामाणिक ग्रन्थ समझा जाता है।

४. लघीयस्त्रयी—प्रभाचंद्रका 'न्यायकुमुदचन्द्रोदय' इसी ग्रंथका भाष्य है।

५. बृहत्त्रयी—वृद्धत्रयी भी शायद इसीका नाम है।

६. न्यायचूलिका—ग्रंथ भी अकलङ्कदेवका रचा हुआ है।

७. अकलङ्कस्तोत्र—या अकलङ्काष्टक एक श्रेष्ठ स्तुतिग्रंथ है।

(११) अकलङ्कदेवके महान् अध्यवसायसे उस समय दक्षिणभारत जैन विद्वानोंकी विद्वत् प्रभासे चमत्कृत होरहा था। स्वयं अकलङ्कदेवके ही कितने ही सप्रतिम शिष्य थे। श्री माणिक्यनन्दि, विद्यानंद, पुष्पसेण, वीरसेन, प्रभाचंद्र, कुमारसेन और वादीभसिंह आचार्य उनमें उल्लेखनीय हैं। किंतु इन सबमें वृद्धत्वका मान अकलङ्कदेवको ही प्राप्त है!

(१२) अकलङ्कदेवने साहसतुङ्ग राजाकी राजसभाको सुशोभित किया था, जिसका संवत् ८१० से ८३२ तक राज्य करनेका उल्लेख मिलता है। अतः यह कहा जासक्ता है कि अकलङ्कदेव ८१० से ८३२ तक किसी समयमें जीवित थे और उनका अस्तित्वकाल विक्रमकी नवीं शताब्दिका प्रारम्भिक समय है।